UNIVERSAL LIBRARY

OU_186066

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H331.8/L788 Accession No. G.H. 1804

Author लिओंतिएफ एल०।

Title शोषण और श्रम।

This book should be returned on or before the date last marked below.

शोषण और श्रम

लेखक

ए० लियाँतीफ़

अनुवादक

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

प्रकाशक
इण्डिया पब्लिशर्स
३३३ मोहनशिम गंज, इलाहाबाद।

मूल्य
बारह आना

मुद्रक
रामशरण अग्रवाल, प्रगति प्रेस,
३ अ, ड्रूमण्ड रोड, इलाहाबाद।

प्रकाशकीय

आधी सदी के संघर्षों के बाद हमें स्वतन्त्रता मिली है। अब हमें देश की ग़रीबी और भूख मिटानी है। देश के नव निर्माण में मज़दूरों का महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक आधार पर उत्पादन-कार्य कैसे आगे बढ़े? श्रम का उपयोग कैसे किया जाय? स्वतन्त्र और समाजवादी समाज में श्रम का शोषण न हो सकेगा।

श्रम का मूल्य और उपयोग समझने के लिये ही यह महत्व-पूर्ण पुस्तक आपकी भेंट है।

—इण्डिया पब्लिशर्स

हमारी मार्क्सवादी पुस्तकें

१—धर्म पर लेनिन के विचार	१।)
२—द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद	॥=)
३—विश्व मजदूर आन्दोलन का इतिहास	१)
४—पूँजीवादी शोषण व्यवस्था	॥)
५—कम्युनिज्म धर्म और आचार	॥)

अन्य प्रकाशन

१—धरती की बेटी (उपन्यास)	लेखक रहबर	३)
२—उपहास (कहानी संग्रह)	,, ,,	२॥)
३—स्वतन्त्रता संग्राम के ६० वर्ष	,, श्री कृष्णदास	४॥)
४—पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच	,, प्रकाश चंद्र गुप्त	१॥।)
५—अर्थ-पिशाच	,, शील	२)
६—भारत माता (कहानी)	,, हाजरा बेगम	॥)

—इण्डिया पब्लिशर्स

प्रवेश

स्टेन्ली जेवन्स नाम के अंगरेज़ अर्थशास्त्री ने श्रम की परिभाषा उस अनचाहे शारीरिक अथवा मानसिक उद्योग के रूप में की है जो कि पूरी तरह से अथवा अपूर्ण रूप से उससे लाभप्रद वस्तु की प्राप्ति के लिए किया जाता है। एम्ब्रोज़ बिअर्स नाम के एक अमरीकी लेखक ने अपनी 'दि डेविल्स डिक्शनरी' (दानवी कोष) में, जो कि एक तीव्र तथा चुटीली व्यंग्यात्मक कृति है, श्रम को ऐसा प्रयत्न कहा है जिससे क ख के लिए सम्पत्ति प्राप्त करता है। इन दोनों परिभाषाओं का सम्बन्धित होना स्वाभाविक है: जो श्रम किसी दूसरे को सम्पत्ति-वान बनाने के लिए किया जाता है, वह अनचाहा तो होगा ही।

श्रम क्या है ?

श्रम मनुष्य की चेतना की आधारभूत स्थिति है। श्रम के ही द्वारा मनुष्य प्रकृति के जीवनप्रद तत्वों, उसके उदार उपहारों तथा उसकी अमर शक्तियों पर अधिकार प्राप्त करता है। मानव जीवन की यह सबसे पहली आवश्यकता, जो कि दासता की भावना से ओत प्रोत हो गई है, ऐसा अभिशाप बन गई है, जिससे कि मृत्यु भी भली लगती है।

मार्क्स ने पूँजीवादी समाज में श्रम करने वालों की दासता तथा दुर्दशा का निम्नलिखित रूप में वर्णन किया है:

"वह श्रम करता है, इसलिए कि जिन्दा रह सके। वह इस श्रम को जीवन के आवश्यक अंश के रूप में नहीं स्वीकार करता, वरन् अपने जीवन का अपहरण मानता है। उसका यह श्रम इस प्रकार एक वस्तु हो जाता है, उसकी चेतना की अभिव्यक्ति नहीं। अपने लिए वह जो कुछ बनाता है, वह उसकी अपनी ही बुनी हुई रेशम नहीं है; वह अपना सोना नहीं है जिसे वह खान से निकालता है; वह अपना राजभवन नहीं है जिसे वह बनाता है। अपने लिए तो वह केवल कुछ वेतन ही बनाता है और रेशम, सोना तथा राजभवन उसके लिए जीवन की कुछ आवश्यक वस्तुओं के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं—सम्भवतः कुछ रुई के कपड़ों में, ताँबे के सिक्कों में, तथा एक साधारण से घर में। और, वह मजदूर, जो बारह घंटे बुनता है, कातता है, खोदता है, खनता है, पत्थर तोड़ता है, बोझ ढोता है तथा इसी प्रकार के और काम करता है—क्या यही बारह घंटे का बुनना, कातना, खोदना, खानना, पत्थर तोड़ना, बोझ ढोना, उसके लिए जीवन की अभिव्यक्ति है, जिन्दगी है? नहीं, यह तो ठीक इसके विपरीत है। उसके लिए जीवन का प्रारम्भ तो उस समय होता है, जब यह सब कार्य-कलाप समाप्त हो जाता है; चाय घर में, भोजन करते समय, तथा बिछौने पर! उसका यह बारह घंटे का काम बुनने, कातने, खोदने आदि के रूप में उसके लिए अर्थहीन है। उसका मूल्य उसके लिए केवल उसके वेतन के रूप में है जिससे वह चाय-घर में जा सकता है, कुछ खा पी सकता है तथा बिछौना प्राप्त कर सकता है। अगर रेशम का कीड़ा कातने के बाद अपने वास्तविक रूप में जीवित रह सके तो वह एक मजदूर का पूरा उदाहरण हो जायगा।"

पूँजीवादी देशों में वेतन प्राप्ति के लिए जो श्रम किया जाता है वह स्वतः अपनी प्रकृति से दासता ही है। रोम के दास जंजीरों

में बँधे होते थे; आज का वेतन-प्राप्ति के लिए काम करने वाला, जैसा मार्क्स ने कहा है, अपने मालिक से अदृश्य धागों से बँधा रहता है। जुरमाना का रजिस्टर आज वही आतंक उपस्थित करता है जो पिछले ज़माने में कोड़ों से उत्पन्न हुआ करता था।* पूँजीवादी उत्पादन विधान के कठोर नियम काम करने वाले को पूँजी के रथ में मज़बूती के साथ जोत देते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में विशाल सर्वहारा वर्ग को अपना पेट भरने के लिए काम करना पड़ता है। उनका पेट ही उसे दासत्व स्वीकार करने के लिए मजबूर करता है।)

किन्तु पूँजीवादी शोषण उन्हीं भ्रमात्मक परिधानों में आवृत्त रहता है जो उसे अपने से पहले के शोषणों से भिन्न बताते हैं। पूँजीपति वर्ग पूँजीवाद के उत्थान के दिनों में विशेष रूप से, वेतन व्यवस्था से उत्पन्न होने वाले भ्रम के सहारे बड़े कौशल्य से अपने दासों को उस शारीरिक तथा मानसिक उद्योग के लिए मजबूर करता है, जिसकी दास तथा सामन्त युगों में कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। पूँजीवाद ने अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बहुत सी धूर्ततापूर्ण रीतियों तथा विधानों की खोज की है: लाभ के विभाजन से लेकर टायलरवाद तथा 'फोर्डवाद' तक जो कि एक साथ ही 'भूख' की बलात्—दमन शक्ति को छिपा तथा बढ़ा देते हैं।

निरन्तर कार्यरत रहने वाले किसानों का जीवन भी, जिनकी संख्या संसार में सब से अधिक है, इसी पूँजीवादी शोषण व्यवस्था से परिचालित होता है। पूँजीवादी व्यवस्था में किसानों का शोषण मज़दूरों के शोषण से केवल रूप में भिन्न है; वह बड़े कौशल से किया जाता है। एक साधारण किसान अपने जीवन भर, वास्तव में वर्षों से खोई हुई, फिर भी दिखाई देने वाली 'स्वतंत्रता' की रक्षा के लिए, प्रयत्न शील रहता है। किन्तु उसके

मानवेतर परिश्रम के फल ज़मीदारों, अमीर किसानों, व्यापारियों तथा बंकपतियों के कोषों को अधिक से अधिक भरते जाते हैं। उसके रक्त और मज्जा श्रेणियों के विभिन्न समूहों के लिए अच्छे खासे रुपयों में ढलते जाते हैं।

श्रम मानव समाज की सब से पहली आवश्यकता है। यदि एक राष्ट्र एक दो सप्ताह के लिए भी, जैसा कि मार्क्स ने कहा है, श्रम करना बन्द कर दे, तो वह भूख के कारण नष्ट हो जायगा।

श्रम के ऊपर मानव समाज आधारित ही नहीं है; वरन् एक प्रकार से श्रम ने ही मनुष्य का निर्माण किया है।

वह मनुष्य, जो अपने हाथों तथा मस्तिष्क के श्रम के सहारे जीवन-यापन करता है, अपने श्रम के महान रचनात्मक परिणाम को बिना देखे नहीं रह सकता। जैसा कि सर विलियम पेटी ने बड़े सुन्दर रूप में कहा है वह यह भली प्रकार समझ लेगा, कि—"श्रम, धन का पिता है और धरती उसकी माता है।"

किन्तु शोषकों के लिए कराए जाने वाले शताब्दियों के बलात् तथा कठोर श्रम ने श्रम में अन्तर्निहित आनन्द की भावना को समाप्त कर दिया है; उसने श्रम की चेतना को, जो एक महान रचनात्मक शक्ति के रूप में व्यक्त होती थी, विलुप्त कर दिया है, जिससे कि वह एक थकाने वाला भारी बोझ बन गया है।

श्रम वरदान है अथवा अभिशाप? धर्म इसी रूप में प्रश्न को उठाता है। अपनी उदार प्रवृत्ति के अनुसार उसने समयानुकूल विभिन्न प्रकार के किन्तु सदा ही झूठे उत्तर दिए हैं। उसने श्रम को मूल पाप से मुक्त करने वाला कहा है; मनुष्य-समाज को पित्रों द्वारा किये गये पापों के लिए मिलने वाले दंड के रूप में स्वीकार किया है; इस भवसागर को पार करते समय सर पर रक्खा हुआ वह बोझ माना है जिसे सद् जन सफलता के

साथ वहन कर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। और, इस सब का उद्देश्य जनता को इस हिंसा तथा आतंक की व्यवस्था में विनम्र तथा दासता की भावना से ओत-प्रोत रखना है।

६ बाइबिल के एक अध्याय में हमने पढ़ा है: "दुःख से मनुष्य की उत्पत्ति उसी प्रकार होती है जैसे आग से चिनगारियाँ ऊपर उठती हैं।" धर्मध्वजों का कहना है कि केवल ग़रीबी ही सुखमय नहीं होती वरन् खिन्नता में भी सुख है। उनका कहना है कि "जो निर्धन हैं, वे आत्मानन्द की अनुभूति करते हैं।" कवि और चित्रकार अपने शब्दों तथा तूलिका से इस 'पवित्र दुःखानुभूति' की सुन्दरता का चित्रण करते हैं। और, यह सब उस सामाजिक व्यवस्था को सप्रमाण दिखाने के लिए तथा सुरक्षित रखने के लिए किया जाता है जिसमें जनता के एक विशाल समूह को कठोर श्रम के कष्टमय जीवन को व्यतीत करना पड़ता है। इन प्रयत्नों का उद्देश्य उस सामाजिक व्यवस्था को, जिसमें कुछ थोड़े से व्यक्ति बहुतों के निरन्तर कष्टमय जीवन के सहारे बिना कुछ काम किए आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हैं, सहज तथा सनातन साबित करना भी है।

शताब्दियों तक शासकों के लिए होने वाले श्रम ने आदिम युग के जीवन को आदर्श का रूप दे दिया है। लगभग सभी देशों के जन-गीतों में हमें आदिम 'स्वर्ण-युग' के प्रभाव-पूर्ण चित्रण मिलते हैं। उसकी कथा सहस्रों वर्षों से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलती आई है। किन्तु वस्तुतः वह 'स्वर्ण युग' कभी हुआ ही नहीं। आदिम मानव को प्रकृति के साथ संघर्ष करने में अनेक कठिनाइयों से उलझना पड़ता था; वह विमाता प्रकृति के लिए एक खिलवाड़-सा था। मनुष्य उस समय प्रकृति की विभिन्न शक्तियों से आबद्ध था। मनुष्य के जीवन तथा भाग्य पर प्रकृति का पूर्ण एकाधिपत्य था। उस शोषण-व्यवस्था को दमन-नीति किन्तो

भयंकर होगी जिसमें मनुष्य के आदिम युगीन जीवन को 'स्वर्ण-युग' का रूप दे दिया गया है।

पूँजीवाद के पहले भी शोषण की व्यवस्था थी। दास-युग में दासों को अपने निकम्मे स्वामियों के लिए जीवन भर जी तोड़ काम करना पड़ता था। सामान्त-युग में खेतिहरों को अपने भू-स्वामियों के लिए, जो बिना कुछ श्रम किए ही भोग-विलास में रत रहा करते थे, कठिन परिश्रम करना पड़ता था। आज पूँजी-वाद के युग में असंख्य वेतन-प्राप्त दासों को अपने आधुनिक स्वामियों—पूँजीपतियों—के लिए जीवन भर श्रम करना पड़ता है।

पूँजीवादी शोषण-व्यवस्था में, उसके पहले की व्यवस्थाओं से जो मुख्य भेद हैं उनमें से एक यह भी है कि इसमें शोषण के लिए कभी न मिटने वाली भूख होती है, दूसरों के श्रम को बिना मूल्य दिए हजम कर लेने की प्रवृत्ति होती है। पहले की व्यव-स्थाओं में शोषकों के उदर के आकार में ही, जैसा कि मार्क्स ने कहा है, शोषण की सीमायें बँधी हुई थीं। कारण, उनमें दास तथा खेतिहरों को अपने स्वामियों तथा भू-स्वामियों की निज की तथा नौकरों और आश्रितों की ही आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती थी। पूँजीवादी व्यवस्था ने इन सीमाओं को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। मजदूर के श्रम से पूँजीपति और अधिक अमीर होता है, उसकी पूँजी बढ़ती है; और उसकी पूँजी के रूप में धन की लिप्सा की वास्तव में कोई सीमा नहीं है।

पूँजीवाद सर्वहारा वर्ग से प्राप्त होने वाले अतिरिक्त मूल्य की अभिवृद्धि के लिए विशाल उत्पादक शक्तियों को उत्पन्न करता है। पूँजीवाद उत्पादन के लिए मशीनों की सृष्टि करता है; किन्तु ये मशीनें मनुष्य के श्रम को हलका करने, तथा मजदूरों की अवस्था सुधारने के लिए नहीं उपयोग में लाई जातीं, वरन् अति-रिक्त मूल्य को बढ़ाने तथा शोषण को और गम्भीर बनाने के

लिए काम में लाई जाती हैं। उनका उपयोग मज़दूरों के विशाल समूह को और भी अधिक दरिद्र बनाने के लिए होता है; मज़दूरों के एक विशाल समूह को ख़ाली हाथ रख कर बेकारों की एक सुदृढ़ सेना बनाए रखने के लिए होता है, जो कि मौक़े बे मौक़े काम आ सके।

पूँजीवादी व्यवस्था में मशीनों का उपयोग तथा उससे जिस अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि होती है, वेतन-प्राप्त दासों की दुर्दशा को और भी गम्भीर बनाते हैं। एक मज़दूर का सम्पूर्ण जीवन उसमें केवल काम करने के समय में ही परिवर्तित हो जाता है। पूँजीवाद मज़दूरों को सूर्य के प्रकाश से भी दूर कर देता है, उन्हें रात को काम करने के लिए मजबूर करता है, उनके खाने-पीने का समय भी उत्पादन के प्रवाह में मशीनों को तेल में भिगोने का ही रूप ले लेता है जिससे वे भली प्रकार काम कर सकें। टामस हुड नाम के अंग्रेज़ कवि ने वेतन प्राप्त दासों की इस दुर्दशा का अपने 'सॉंग आफ़ दि शर्ट' (क़मीज़ का गीत) में इस प्रकार वर्णन किया है :—

उस क्षण तक करते रहो काम,
जब तक आँखों में ज्योति रहे;
उस क्षण तक करते रहो काम,
मन में चिन्तन की शक्ति रहे।
सीते जाओ, सीते जाओ, सीते जाओ,
होकर ग़रीब, भूखे रह कर, धूलि से सने;
सीते जाओ, दो धागों से सीते जाओ,
जिसमें क़मीज़ औ कफ़न एक ही साथ बनें।

पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था, जैसा कि मार्क्स और एंजिल्स ने 'कम्यूनिस्ट मेनिफ़ेस्टो' (कम्यूनिस्ट घोषणा-पत्र) में भविष्य-वाणी की थी, अपने दासों को दासता में भी

जीवित रहने का विश्वास नहीं दिला सकती। सर्वहारा वर्ग के व्यक्ति को जीवन भर बेकारी का भूत सताता रहता है; और, जब यह भय वास्तविकता का रूप ले लेता है, मजदूर काम से अलग कर दिया जाता है, तो काम के समय के कठोर परिश्रम का कष्ट, जबरन लादे हुए आलस्य, दरिद्रता, भूख तथा निराशा के और भी अधिक गम्भीर कष्टों का स्थान ले लेता है।

और, उन्हीं के समानान्तर हमें पूँजीपतियों का निकम्मा तथा पराश्रित जीवन देखने को मिलता है, जो कि पाल लेफ़ाग के अनुसार केवल भोग-विलास में ही श्रम करते हैं, खाते हैं, पीते हैं और खाद उत्पन्न करते हैं।

समाजवाद और श्रम अभिन्न हैं

श्रम मानव-समाज के अस्तित्व की आवश्यक तथा स्वाभाविक अवस्था है, वह किसी प्रकार का समाज हो। जन-साधारण में प्रचलित कला-कृतियाँ, कवितायें, प्रसिद्ध कलाकारों की रचनायें हमारे सामने श्रम के उस महान रचनात्मक शक्ति के, जो कि मनुष्य को प्रकृति के शासक में परिवर्तित कर देती है, असंख्य उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

मानव-समाज में श्रम के उचित और आवश्यक मूल्य को सबसे पहले मार्क्सवाद ने ही समझा था। इस खोज ने मनुष्य की विचारधारा तथा ज्ञान के विकास में एक नवीन युग का सूत्र-पात किया है और वैज्ञानिक समाजवाद की सुदृढ़ नींव डाली है।

सैकड़ों हजारों वर्षों से श्रम को अधिकांश मानव-समाज अभिशाप के रूप में देखता आया है, और आज भी विश्व के छः भागों में से पाँच में यही समझा जाता है: कारण, यह स्वतः काम करने वालों के लाभ के लिए अथवा मनुष्य मात्र को सुखी करने के लिए नहीं किया जाता, वरन् केवल शोषकों के लिए होता

है। शोषण की व्यवस्था में यही श्रम की प्रमुख विशेषता है, यही समाज में श्रम करने वाले की स्थिति को निर्धारित करती है, तथा श्रम के प्रति मनुष्य के विचार तथा दृष्टिकोण आदि को बनाती है।

[illegible] ने इतिहास में पहली बार श्रम को शोषण व्यवस्था से मुक्ति दी है। सैकड़ों हज़ारों वर्षों तक शोषकों के लिए अनचाहे श्रम करने के बाद आज मनुष्य अपने लिए, स्वतन्त्र मानव समाज के लिए, अपने देश के लिए तथा मनुष्य मात्र के लिए काम कर सकता है।

सोवियत भूमि में, मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण को खतम कर दिया गया है और आज सामाजिक श्रम से उत्पन्न वस्तुओं के द्वारा सोवियत के सभी लोग, सम्पूर्ण समाज, फ़ायदा उठाते हैं। इससे श्रम का वह आवश्यक तथा अतिरिक्त श्रम के रूप में विभाजन समाप्त होता है, जो कि सभी शोषण व्यवस्थाओं का एक प्रमुख अंग था।

(समाजवादी व्यवस्था के सम्बन्ध में सोचते हुए मार्क्स ने लिखा था:—

"पूँजीवादी उत्पादन-विधान को खतम करने के बाद ही प्रति दिन के काम के घंटे श्रम के आवश्यक समय में घटाए जा सकेंगे। किन्तु उस समय भी श्रम का आवश्यक समय कुछ बढ़ जायगा। एक ओर तो इसलिए कि जीवन की आवश्यकताओं की अभिवृद्धि होगी, मजदूर के जीवन का आदर्श बिलकुल ही बदल जायगा; दूसरी ओर इसलिए कि आज जो अतिरिक्त श्रम है उसका कुछ हिस्सा तब आवश्यक श्रम में गिना जाने लगेगा। मेरा तात्पर्य उस श्रम से है जो कभी आवश्यकता पड़ने पर उपयोग में आने वाले कोष अथवा संग्रह के निर्माण के लिए आवश्यक होगा।")

उस समाजवादी आर्थिक व्यवस्था में, जो आज सोवियत समाजवादी राष्ट्र-संघ में चल रही है, मार्क्स की भविष्य-वाणी सही निकली है। सोवियत भूमि के सभी मज़दूरों, सामूहिक खेतिहरों तथा बुद्धि-जीवियों का श्रम आज आवश्यक श्रम है, कारण, उससे समस्त मज़दूर वर्ग को, सम्पूर्ण समाज को, लाभ होता है। इसके साथ ही वहाँ के जितने भी हाथ तथा बुद्धि से काम करने वाले हैं सभी के जीवन की दशा में उन्नति हुई है; उनके रहन-सहन के आदर्श, जैसे कि वे पूँजीवादी व्यवस्था में थे, उससे बहुत ऊपर उठे हैं।

मज़दूरों के भौतिक तथा सांस्कृतिक आदर्शों का ऊपर उठना समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के विकास का एक आधार-भूत नियम है। हम उसे सोवियत भूमि में स्टालिन की विभिन्न पंच वर्षीय योजनाओं की सफलता में कार्य करते हुए देख सकते हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में (१९३३-३७) राष्ट्रीय खपत का परिमाण दूने से भी अधिक हो गया है।

राष्ट्रीय आय मे भी विशेष वृद्धि हुई है। सन १९१६ में २१ अरब रूबल से, १९२८ में २५ अरब रूबल, १९३८ में वह १०५ अरब रूबल हो गई और १९४० में १२५, अरब ५० करोड़ रूबल, अर्थात लगभग छः गुनी; जब कि बड़े बड़े पूँजीवादी देशों में अपने समृद्धि के वर्षों में राष्ट्रीय आय केवल ३ से ८ फी सदी बढ़ी है।

सोवियत संघ में यह सम्पूर्ण आय, क्योंकि वह पूँजीवादी राष्ट्रों से स्वतन्त्र है तथा स्वतः उसमें कोई मुफ्तखोर वर्ग नहीं है, सीधी तौर से अथवा घूम फिर कर मज़दूरों के ही उपयोग में लाई जाती है। दूसरी पंच-वर्षीय योजना की अवधि में राष्ट्रीय आय के दूने हो जाने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि सोवियत संघ में मज़दूरों के रहन-सहन का दर्जा ऊपर उठ रहा है।

राष्ट्रीय वेतन का हिसाब १९३१ के ३२ अरब ७० करोड़ रूबल से, १९३७ में ८२ अरब २० करोड़ रूबल होगया और १९४० में १२० अरब ७० करोड़ रूबल। सन १९४१ के हिसाब में प्रत्येक मजदूर के १९४० के वेतन में साढ़े छः फ़ी सदी बढ़ती हुई है।

सामूहिक खेतिहरों की व्यक्तिगत आय में भी बढ़ती हुई है। सन १९३७ में सामूहिक खेत पर काम करने वाले प्रत्येक परिवार ने, प्रायः समस्त देश में, सन १९३२ में उसने जितना अनाज पाया उसका तिगुना और सिक्कों के रूप में उसने जितनी आय प्राप्त की थी उसकी साढ़े तीन गुनी पाई।

सामूहिक खेतों की सम्पूर्ण आय सन १९३७ के १४ अरब २० करोड़ रूबल से सन १९३९ में १८ अरब रूबल हो गई।

बेकारी के दूर होने तथा प्रत्येक घर के अधिक व्यक्तियों के काम में लग जाने से प्रत्येक मजदूर के आश्रितों की भी कमी हुई है। सोवियत संघ के मजदूर वर्ग के रहन सहन के दर्जे के ऊपर उठने का क्रम उनके उपभोग की चीजों के बढ़ने में देखा जा सकता है।

दूसरी पंच-वर्षीय योजना में मजदूरों तथा दफ़्तरों में काम करने वाले लोगों के द्वारा उपयोग में आने वाली वस्तुओं की इस प्रकार बढ़ती हुई है: साधारण गोश्त साढ़े तीन गुना; बढ़िया गोश्त चौगुना, मक्खन ढाई गुना; गेहूँ की रोटियाँ तीन गुनी; फल और तरकारियाँ लगभग चौगुनी।

मजदूरों के सांस्कृतिक आदर्शों में भी उल्लेखनीय विकास हुआ है। मजदूरों के बीच होने वाले सांस्कृतिक प्रदर्शन में सरकार की ओर से सन १९३२ में ४ अरब ४० करोड़ रूबल खर्च हुआ था; सन् १९३७ में वह बढ़ कर १४ अरब रूबल अर्थात् तिगुने से भी अधिक हो गया।

मजदूरों की सांस्कृतिक उन्नति हुई है, इसका प्रमाण सोवियत

संघ में पंचवर्षीय योजनाओं के काल में होने वाली सांस्कृतिक तथा कलात्मक क्रान्ति में मिलता है। सन १६२६ से सोवियत संघ की जन-संख्या सन १६३६ तक १६ प्रतिशत बढ़ी है। किन्तु कुशल मज़दूरों तथा बुद्धिजीवियों की संख्या इसी काल में इस प्रकार बढ़ी है : सन १६२६ से १६३६ तक मेकैनिक्स की संख्या ३·७ गुनी, धातुओं पर काम करने वालों की संख्या ६·८ गुनी, ढलाई आदि का काम करने वालों की संख्या १३ गुनी, रेलवे इंजीनियरों की संख्या ४.४ गुनी और ट्रैक्टर चलाने-वालों की संख्या २१५ गुनी, बढ़ी हैं। बुद्धिजीवियों में इंजी-नियरों की संख्या ७·७ गुनी, कृषि शास्त्र के विशेषज्ञों की संख्या ५ गुनी, वैज्ञानिकों की ७·१ गुनी, अध्यापकों की साढ़े तीन गुनी और डाक्टरों की २·३ गुनी हो गई है।

ऊपर लिखी हुई संख्याओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि सोवि-यत संघ की राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था समाजवादी उत्पादन द्वारा विकसित हुए नियमों के आधार पर योजना के अनुसार बढ़ रही है। इसका तात्पर्य है कि राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था अपने सभी क्षेत्रों में विकसित हो रही है, सामाजिक पूँजी बढ़ रही है और मज़दूरों के रहन-सहन का स्तर भी ऊपर उठ रहा है। यह आँकड़े सामाजिक श्रम की महान् शक्तिमत्ता के सबूत हैं।

/ शोषकों के द्वारा जबरन कराए जाने वाले श्रम का स्थान स्वतः मज़दूर के लिए, समाज के लिए, समस्त देश के लिए, स्वतंत्रापूर्वक किए जाने वाले श्रम ने ले लिया है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि समाजवादी व्यवस्था में मनुष्य के लिए श्रम कोई आवश्यक नहीं रह गया है। यह नहीं हुआ है।/

सोवियत संघ में जब किसानों ने सामूहिक खेतों में कार्य करना आरम्भ किया था, तब नई व्यवस्था के शत्रुओं ने सामू-हिक खेती की योजना को, इस प्रचार के द्वारा कि समाजवादी

व्यवस्था में श्रम करने की आवश्यकता ही नहीं है, भीतर से खतम करने की कोशिश की थी। स्तालिन ने तुरन्त ही इस चालाकी का भण्डाफोड़ किया। स्तालिन ने उस समय साधारण बोलचाल की भाषा में, जिसे सभी किसान आसानी से समझ सकते थे, यह समझाया था कि समाजवाद श्रम के ऊपर ही आधारित है; श्रम के बिना वह असम्भव है; तथा समाजवाद पहली बार हर ईमानदार मजदूर के लिए एक विशाल कार्यक्षेत्र प्रस्तुत करता है। उन्होंने लिखा था :

"कभी कभी यह कहा जाता है कि अगर हम समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत रह रहे हैं तो हम परिश्रम क्यों करें ? हमें पहले भी मेहनत करना पड़ती थी और आज भी। आज तो हमें मेहनत करना बन्द कर देना चाहिए। साथियो! इस प्रकार की बात चीत बिलकुल लगो है। यह आलसियों की बातचीत है, ईमानदार मजदूरों की नहीं। समाजवाद का तात्पर्य श्रम का बन्द हो जाना नहीं है। वरन ठीक इसके विपरीत यह श्रम पर ही आधारित है। समाजवाद और श्रम एक दूसरे से अभिन्न हैं। लेनिन ने कहा था : "जो श्रम नहीं करता उसे खाना पाने का भी अधिकार नहीं है।" इसका अर्थ क्या है ? लेनिन ने ये शब्द किसके विरोध में कहे हैं ? शोपकों के विरुद्ध, उनके विरुद्ध जो स्वतः श्रम नहीं करते और दूसरों से बलपूर्वक श्रम कराते हैं और उनके श्रम के सहारे स्वयं धनी बन जाते हैं। और किसके विरुद्ध ? उन आलसियों के विरुद्ध जो दूसरों के सहारे जीवन-यापन करना चाहते हैं। समाजवाद की माँग है कि मनुष्य को आलसी नहीं होना चाहिए, वरन् ईमानदारी से श्रम करना चाहिए, दूसरों के लिए नहीं और न अमीरों तथा शोषकों के लिए, वरन् अपने लिये तथा सम्पूर्ण समाज के लिए।"

सोवियत संघ में पूँजीपतियों, ज़मींदारों, महाजनों तथा

अन्य शोषकों को सदा के लिए समाप्त कर दिया गया है; और इसी प्रकार उत्पादन के साधनों—ज़मीन, कारखानों, रेलों आदि पर के व्यक्तिगत प्रभुत्व को भी खतम कर दिया गया है।

उत्पादन की समाजवादी प्रणाली तथा उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व सोवियत संघ के आर्थिक आधार हैं।

स्तालिन ने कहा है कि "यह चेतना कि मजदूर पूँजीपति के लिए नहीं वरन् अपने वर्ग तथा राज के लिए कार्य कर रहा है, हमारे उद्योग-धन्धों के विकास और उन्नति के लिए एक महान प्रेरक शक्ति का कार्य करती है।"

पूँजीवादी देशों में धन के आधार पर मनुष्य का मूल्य निर्धारित होता है। सोवियत संघ में परिस्थिति भिन्न है। समाजवादी व्यवस्था में श्रम करने वाले को आदर तथा सम्मान प्राप्त होता है। सभी संघों के स्टाखनोवाइटों की कान्फ्रेंस में स्तालिन ने कहा था :

"हमारे देश में लोग शोषकों के लिए तथा पराश्रितों को धनवान बनाने के लिए श्रम नहीं करते; वरन् उन्हें अपने लिये, अपने वर्ग और अपने निज के सोवियत समाज के लिए, जिसमें कि शक्ति मजदूर-वर्ग के आगे बढ़े हुए व्यक्तियों के हाथ में रहती है, श्रम करना पड़ता है। इसीलिए तो हमारे देश में श्रम का एक सामाजिक मूल्य है, और वह आदर तथा सम्मान की वस्तु है। पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम एक व्यक्ति की अपनी वस्तु होती है। तुमने कुछ अधिक उत्पादन किया है—अच्छा, तो, कुछ और लो, और जितनी अच्छी तरह रह सको रहो। कोई तुम्हे नहीं जानता, न जानना चाहता है। तुम्हे पूँजीपतियों के लिए श्रम करना पड़ता है और उससे उन्हीं के धन की वृद्धि होती है। उनसे और आशा ही क्या की जा सकती है? इसीलिए तो उन्होंने तुम्हे नौकर रक्खा था कि तुम उनके धन की वृद्धि करो। अगर तुम्हें यह

स्वीकार नहीं, तो बेकारों की संख्या बढ़ाओ, और जिस तरह भी रह सकते हो रहो—"हम और दूसरे खोज लेंगे जो हमारी मानेंगे।" इसीलिए तो पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम का उचित मूल्य स्वीकृत नहीं होता। इस प्रकार की परिस्थिति में स्टखनाव आन्दोलन के लिए कोई स्थान ही नहीं है, किन्तु सोवियत व्यवस्था में दूसरी ही परिस्थिति है। यहाँ श्रम करने वाला सम्मानित होता है। यहाँ उसे शोषकों के लिए नहीं, वरन अपने लिए, अपने वर्ग के लिए, समाज के लिए श्रम करना पड़ता है। यहाँ मजदूर अपने को उपेक्षित तथा अकेला नहीं अनुभव कर सकता, वरन वह व्यक्ति जो श्रम करता है, अपने को देश का एक स्वतन्त्र नागरिक, सम्माननीय व्यक्ति समझता है। और अगर वह समाज के लिए अच्छा काम करता है, तो वह सामान्य मजदूरों के आदर की वस्तु हो जाता है तथा विशेष प्रशंसित होता है।

सन १९२५ में ही स्तालिन ने (प्रवदा, जून १३, १९२५) लिखा था :—

"मजदूर वर्ग आज यह समझता है कि वह केवल मजदूर वर्ग ही नहीं वरन् शासक-वर्ग भी है—इसी प्रकार के वर्ग द्वारा असम्भव भी सम्भव करके दिखाया जा सकता है।" आज यह बात कहे हुए कितने ही वर्ष व्यतीत होगए। उस समय केवल उद्योग धन्धों को युद्ध-पूर्व की परिस्थिति में लाने का ही प्रयत्न हो रहा था। बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों द्वारा, युद्धपूर्व के रूस में, जो प्रधानतः एक पिछड़ा हुआ खेतिहर देश था, जितना उत्पादन होता था, उसका चौथाई ही हो रहा था। स्थिति संभलने पर छोटे खेतों के सागर के बीच बड़े बड़े उद्योग-धन्धे पहाड़ी टापुओं से लगते थे। उस समय तक अधिकांश उद्योग-धन्धे तो समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत आगए थे; किन्तु खेती अभी

भी छोटे पैमाने पर ही होती थी। इन असंख्य छोटे छोटे बिखरे खेतों से पूँजीवाद के कीटाणु प्रति दिन और प्रति घंटा पैदा होते थे।

तब से सोवियत भूमि में महान परिवर्तन हो गया है। समाजवादी उद्योग एक महान शक्ति हो गए हैं। सोवियत संघ अब एक महान् औद्योगिक देश है। इस औद्योगीकरण ने खेती की व्यवस्था में भी क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। छोटे छोटे व्यक्तिगत खेत अब सामूहिक खेती की व्यवस्था में आगए हैं और खेती भी अब बड़े पैमाने पर समाजवादी रीति से होती है। पूँजीवाद पूर्णतः समाप्त कर दिया गया है। पहले सोवियत संघ में पांच भिन्न आर्थिक व्यवस्थाएं विकास की विभिन्न श्रेणियों में वर्तमान थीं; आज सोवियत संघ एक ही आर्थिक व्यवस्था पर आधारित है: समाजवादी व्यवस्था।

श्रम—एक सम्मान की वस्तु है

। दासता की अदृश्य तथा दिखाई देने वाली जंजीरों के टूटने ही क्या परिस्थिति होगी? उस समय मनुष्य को श्रम करने के लिए प्रेरणा कहाँ से मिलेगी? मनुष्य के भाग्य के सम्बन्ध में सोचने वाले विचारकों के मन में इन प्रश्नों का उठना स्वाभाविक था।

पूँजीपतियों तथा उनके सहारे जीवनयापन करने वाले विचारकों का कहना था कि मनुष्य आलसी हो जायगा, कोई भी काम नहीं करना चाहेगा, कोई भी अपने श्रम से कुछ उत्पन्न नहीं करेगा और इस सब का परिणाम यह होगा कि समस्त मानव समाज खत्म हो जायगा। /

कल्पना प्रधान समाजवादियों ने, जिन्होंने कि पूँजीवाद की कठोरताओं को भली प्रकार समझा था और उसे घृणा करने

लगे थे, इस समस्या का बड़ा सरल सा हल उपस्थित किया क्योंकि उन्हें समाज के विकास के नियमों का पूर्ण ज्ञान नहीं था। जहाँ पूँजीपतियों के संकुचित मन में पूँजीवाद को छोड़ कर अन्य किसी सामाजिक व्यवस्था के लिए जगह ही नहीं थी, कल्पना-प्रधान समाजवादी उसी पूँजीवाद को एक भयंकर भूल समझते थे, एक विशालकाय सर्वग्रासी दानव के रूप में देखते थे और मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध बताते थे। उनका कहना था कि जैसे ही यह दानव रास्ते से हटा दिया जायगा, मनुष्य की प्राकृतिक शक्तियाँ जागृत हो जायँगी और सारी समस्या हल हो जायगी।

मार्क्स और एंजिल्स ने, जिन्होंने कि समाजवाद की काल्पनिकता को वैज्ञानिकता प्रदान की है, पहली बार वैज्ञानिक ढंग से यह प्रतिपादित किया कि सफल सर्वहारा क्रान्ति के द्वारा ही सर्वहारा वर्ग का एकाधिपत्य स्थापित हो सकता है और समाज को रूपान्तरित किया जा सकता है। उन्होंने अपने को वास्तविकता पर आधारित किया और उसके आधार पर समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की रूप-रेखा बनाई।

उन्होंने यह दिखाया कि सर्वहारा क्रान्ति के सफल होने पर पूँजीवाद द्वारा उत्पन्न किए हुए तत्वों के सहारे ही समाजवादी व्यवस्था उत्पन्न होगी। उन्होंने यह पहले से ही बता दिया था कि समाज को एक ऐसे संक्रान्ति-काल के भीतर से गुजरना पड़ेगा जिसमें कि सर्वहारा वर्ग न केवल सामाजिक जीवन के विभिन्न रूपों को ही बदलेगा वरन अपने को भी परिवर्तित कर डालेगा। यह संक्रान्ति काल, जिसको मार्क्स ने साम्यवादी व्यवस्था का प्रारम्भिक रूप कहा है, आगे की व्यवस्था यानी वास्तविक साम्यवादी व्यवस्था के निर्माण का समय होगा जिसमें श्रम, जल तथा वायु की भाँति, जीवन के लिए एक आवश्यक वस्तु हो जायगा। प्रारम्भिक अवस्था यानी समाजवाद के समय में समाज

को व्यक्ति से श्रम कराने के लिए कुछ निश्चित प्रेरक शक्तियों का उपयोग करना पड़ेगा।

फ़ूरियर नाम के एक कल्पनावादी फ्राँसीसी का विचार था कि पूँजीवाद के नाश के बाद श्रम एक मनोरंजन या खेल की वस्तु हो जायगा। मार्क्स ने इसका दृढ़ विरोध किया है। अपने महान् ग्रन्थ 'कैपिटल' के लिखने के लिए किये गए प्रयत्नों में और सन् १८५७—५८ की हस्तलिखित प्रतियों में, जो अब पूरी तरह से प्रकाश में आई हैं, मार्क्स ने फ़ूरियर की भूल का दो बार उल्लेख किया है। एक स्थान पर मार्क्स ने लिखा है कि "श्रम कभी खेलवाड़ नहीं हो सकता जैसा कि फ़ूरियर उसे बनाना चाहते हैं।" दूसरे स्थान पर यह लिखा मिलता है कि श्रम के शोषण-मुक्त होने का "यह तात्पर्य नहीं कि फिर श्रम मात्र खेल हो जायगा, केवल मनोरञ्जन, जैसा कि फ़ूरियर का विचार है।" वास्तविक स्वतन्त्र श्रम, उदाहरणस्वरूप किसी संगीतकार का श्रम, विशेष रूप से थका देने वाला श्रम होता है।

समाजवाद के विरोधियों का बराबर यही कहना रहा है कि मनुष्य केवल तभी श्रम कर सकता है जब उससे जबरदस्ती कराया जाय; पेट की मार से ही वह काम करता है। किन्तु मार्क्स और ऐंजिल्स ने 'कम्यूनिस्ट घोषणा-पत्र' लिखते समय ही इस मूर्खतापूर्ण विचार का मज़ाक बनाया है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा शोषण का नाश होते ही सम्पूर्ण समाज श्रमहीन हो जायगा और समस्त सृष्टि पर आलस्य का साम्राज्य स्थापित हो जायगा।

पूँजीवादी वैज्ञानिकों ने मनुष्य को स्वभावतः आलसी प्राणी कहा था। अपनी इस 'खोज' को सही साबित करने के लिए उन्होंने आदिम समाज का इतिहास झूठे रंगों में रंग दिया था। उन्होंने आदिम मनुष्य के जीवन को एक ग्राम्य-गीत का रूप दे

देखा था, जो कि अपने आप आगे बढ़ता जाता है, यद्यपि वास्तव में उस समय मनुष्य को प्राकृतिक शक्तियों के साथ निरन्तर जोड़ संघर्ष और कठोर श्रम करना पड़ता था। उन्होंने इस सिद्धान्त' का भी प्रतिपादन किया था कि मनुष्य को आदिम अवस्था में बहुत काम नहीं करना पड़ता था।

यह कहने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि वास्तविक इतिहास के साथ इन खोजों का कोई साम्य नहीं है। इन सिद्धान्तों की खोज में मनुष्य के इतिहास के निर्माण का कोई लक्ष्य भी नहीं था। वे तो केवल यह प्रमाणित करने के लिए खोजे गए थे कि मनुष्य केवल श्रेणीगत शोषण के आघातों से काम कर सकता है। इसी आधार पर उन्होंने यह परिणाम निकाला था कि जब वे आघात ही बन्द हो जायँगे, तब समस्त विकास भी रुक जायगा।

सोवियत संघ में समाजवादी योजना की सफलता ने पूँजीपतियों की थैलियों से पलने वाले विचारकों द्वारा बुने गए झूठे जाल को फाड़ डाला है और उस गन्दे प्रचार का भी उचित उत्तर दे दिया है जो मनुष्य को स्वभावतः आलसी कहता था। यह कार्यरूप में निस्सन्देह प्रमाणित हो गया है कि शोषण के बन्धनों से मुक्त होने से श्रम में एक ऐसी रचनात्मक शक्ति आ जाती है जैसी कि मानव समाज में कभी भी नहीं देखी गई।

समाजवाद के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रचलित गल्प यह है कि वह काम करने की शक्ति को बिलकुल खतम कर देगा। 'आर्थिक कर्मशीलता की प्रेरणा-शक्ति' के विषय को लेकर यह साबित करने के लिए विशाल ग्रन्थों की रचना हुई है कि समाजवादी व्यवस्था में श्रम के लिए कोई प्रेरक शक्ति ही नहीं रह जायगी, क्योंकि उसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा दूसरों के श्रम पर जीवन-यापन करने की प्रणाली का लोप हो जायगा।

किन्तु यह सब लिखने वाले यह साधारण-सी बात भूल जाते हैं कि व्यक्तिगत सम्पत्ति की व्यवस्था में समाज के एक विशाल समुदाय को बिना किसी सम्पत्ति के रहना पड़ता है और कुछ इनेगिने शोषकों को ही फ़ायदा उठाने के अवसर मिलते हैं।

समाजवाद रचनात्मक कार्य के लिए वह प्रेरक शक्तियाँ समुपस्थित करता है कि जिनके आगे 'व्यक्तिगत उद्योग' का कुछ मूल्य ही नहीं रह जाता।

पूँजीपति-वर्ग तथा उसके द्वारा पोषित होने वाले वैज्ञानिकों की 'लोक-कल्याण' की सब बातें झूठी हैं, धोखा हैं। मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'कैपिटल' (पूँजी) में जर्मी बैंथम को, जिसने इस 'लोक-कल्याण' के सिद्धान्त की प्रमुख वकालत की है, बड़ी हीन दृष्टि से देखा है। बैंथम के अनुसार स्वतन्त्र प्रतियोगिता के वातावरण में व्यक्तियों के उद्योग से सम्पूर्ण समाज का लाभ होता है। किन्तु पूँजीवाद की यथार्थता इस किम्वदीन्ती की असत्यता प्रत्येक पद पर प्रमाणित करती है। कुछ थोड़े से पूँजीपतियों की धन-वृद्धि तथा जनता के निर्धन होने से, आर्थिक संकटों तथा उनसे उत्पन्न हुये उत्पादन-शक्तियों के निरर्थक विनाश से तथा महामारी की तरह फैलने वाली बेकारी से जो सहस्रों व्यक्तियों को मौत के घाट उतार देती है, किस प्रकार लोक-कल्याण की सृष्टि हो सकती है? जब तक पूँजीपतियों का आधिपत्य है, तबतक 'लोक-हित' की बातें करना केवल पूँजीपतियों की शोषण की नीति पर परदा डालना है।

केवल पूँजीवादी शोषण के विनाश तथा समाजवाद की विजय से ही व्यक्तिगत लाभ के साथसाथ जन-लाभ की वास्तविक सम्भावनायें उत्पन्न हो सकती हैं। सोवियत संघ में, जहाँ समाजवाद विजय प्राप्त कर चुका है, 'जन-हित' समस्त समाज के हित के रूप में दिखाई देता है अर्थात् उन मज़दूरों और मेहनतकशों के

समाज के हित के रूप में जिन्होंने अपने को शोषण की व्यवस्था से मुक्त कर लिया है। व्यक्तिगत लाभ तथा समस्त समाज के लाभ में वहाँ कोई ऐसा विरोध नहीं दिखाई देता जो नष्ट न किया जा सके।

समाजवादी व्यवस्था में व्यक्तिगत तथा जन-लाभ का समन्वय इस सिद्धान्त में मूर्तमान है: "हर एक की क्रियात्मक शक्ति से लेकर, हर एक के काम के अनुसार"। इस सिद्धान्त के अनुशीलन से समस्त समाज के हित की रक्षा होती है; क्योंकि इससे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति भर काम करने की प्रेरणा मिलती है और समाज के लिए अधिकतम हित की सृष्टि होती है; साथ ही इस सिद्धान्त की स्वीकृति से प्रत्येक काम करने वाले के निजी लाभ की भी रक्षा होती है, क्योंकि उसे अपने काम को और अधिक अच्छा बनाने तथा अपनी योग्यता बढ़ाकर अपने रहन-सहन के ढंग को अधिक सुन्दर बनाने का अवसर मिलता है।

पूँजीपतियों के चाकर व्यक्तिगत लाभ, व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा व्यक्तिगत उद्योग की प्रशंसा के गीत गाते हैं। किन्तु पूँजीवाद की कठोर वास्तविकताओं ने बहुत पहले ही स्पष्ट कर दिया था कि यह विशेष प्रशंसित व्यक्तिगत सम्पत्ति पर आधारित व्यक्तिगत उद्योग की व्यवस्था जंगल-राज की तरह है जिसमें भेड़िये तथा गीदड़ों जैसे लालची जन्तुओं का राज्य होता है। यह विशेष प्रशंसित प्रतियोगिता उस भयंकर संघर्ष के रूप में दिखाई देती है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अन्य समस्त व्यक्तियों को अपने शत्रु के रूप में देखता है। इस सत्य को कल्पनावादी समाजवादियों ने बहुत पहले ही देख लिया था; उनमें पूँजीवादी व्यवस्था के दोषों को समझने तथा उसके भयंकर असंगत अन्तर्विरोध को बेधड़क हो स्पष्ट करने की विशेष प्रतिभा थी।

उदाहरणस्वरूप हम पूँजीवादी प्रतियोगिता के सम्बन्ध में फूरियर के विचार उधृत करते हैं :

"डाक्टर चाहते हैं कि लोग बीमार पड़ें और बहुत समय तक बीमार पड़े रहें; वकील चाहते हैं कि प्रत्येक घर के लोग कभी न समाप्त होने वाले मुकदमों में उलझे रहें। राजगीर चाहते हैं कि शहर के किसी हिस्से में आग लग जाय, शीशा जड़ने वाले चाहते हैं कि खिड़कियाँ बर्फ़ानी वर्षा से टूट जाँय......न्यायाधीश सोचते हैं कि फ्राँस में १२०००० अपराध बराबर सालाना होते रहें जिससे फौजदारी अदालत के अधिकारियों की जीविका चलती रहे। इस प्रकार सभ्य समाज में प्रत्येक व्यक्ति समस्त समाज के साथ जानबूझ कर संघर्ष कर रहा है; समाज के लिए हानिकर आर्थिक व्यवस्था में यह स्वाभाविक है। नवीन समाज में इस दुरवस्था का लोप हो जायगा; उसमें व्यक्तिगत लाभ तथा जन-लाभ में किसी प्रकार का अन्तर न होगा।"

फूरियर ने पहले ही यह भली प्रकार देख लिया था कि शोषण के बन्धनों से मुक्त होकर श्रम मनुष्य में उन भावनाओं को उत्पन्न कर देगा जिन्हें पूँजीवादी व्यवस्था में दासों का जीवन व्यतीत करते हुए वह कभी नहीं अनुभव कर सकता।

मार्क्स ने सबसे पहले प्रतियोगिता की वैज्ञानिक व्याख्या की है और अपनी प्रखर बुद्धि से प्रतियोगिता तथा बढ़ा-चढ़ी की भावनाओं के अन्तर को समझा है। अपने ग्रन्थ 'कैपिटल' (पूँजी) में मार्क्स ने लिखा है कि सामूहिक श्रम की व्यवस्था में सामाजिक सम्पर्क से ही बढ़ा-चढ़ी की भावना को आश्रय मिलता है जो कि प्रत्येक काम करने वाले की क्रियात्मक शक्ति को बढ़ाती है। पूँजीवादी समाज में यह भावना, अन्य समस्त सामाजिक श्रम की रचनात्मक शक्ति की भाँति, पूँजी को

ही बढ़ाती है। पूँजीवाद की समाप्ति के बाद समाज के लाभ के लिए इस विशाल शक्ति का उपयोग होना चाहिए।

समाजवादी व्यवस्था में बढ़ा-चढ़ी की भावना की शक्ति की खोज लेनिन ने की है। सोवियत समाज के प्रारम्भिक दिनों में ही लेनिन बराबर इसी समस्या को सोचते रहे कि किस प्रकार पूँजीपतियों की सहायता के बिना और उनके विरोध के बावजूद करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को नए ढंग में ढाला जाय, किस प्रकार प्राचीन काल से मिली हुई सामाजिक वसीयत के साथ नए स्वतन्त्र तथा सुखमय जीवन का निर्माण किया जाय, किस प्रकार शोषकों द्वारा बलपूर्वक कराए जाने वाले श्रम को स्वतः काम करने वालों तथा समस्त श्रमिक समाज के लिए लाभकारी स्वतन्त्र श्रम में परिवर्तित किया जाय।

जनवरी सन् १९१८ में लेनिन ने "प्रतियोगिता को कैसे व्यवस्थित किया जाय" शीर्षक एक लेख लिखा था जिसकी प्रत्येक पंक्ति में उस जनता की रचनात्मक शक्ति पर दृढ़ विश्वास व्यक्त किया गया है जिसने महान् समाजवादी क्रान्ति को सफल बनाया था। अपने इस लेख में लेनिन ने यह स्पष्ट किया है कि समाजवादी अवस्था में ही काम करने वालों को शोषण-व्यवस्था द्वारा कुंठित की गई अपनी रचनात्मक शक्ति तथा प्रतिभा को जागृत करने का अवसर मिलता है। उस समाज में ही मज़दूर अपनी कमर सीधी कर सकता है और अपने मनुष्य होने का अनुभव कर सकता है जिसमें ज़मींदार तथा पूँजीपति वहिष्कृत हो चुके हों, जिसमें व्यक्तिगत सम्पत्ति की व्यवस्था का अन्त हो चुका हो, सामाजिक जन-सम्पत्ति की स्थापना हो चुकी हो और श्रम .शोषण की व्यवस्था से मुक्त हो चुका हो। पूँजीवादी प्रतियोगिता ने जिसकी बड़ी तारीफ़ें हो चुकी हैं वास्तव में मज़दूरों की रचनात्मक प्रतिभा और उत्साह को कुचल डाला है।

समाजवादी व्यवस्था ही वह परिस्थिति उत्पन्न करती है जिसमें सच्ची सहयोग की भावना का विकास हो सकता है और समस्त मज़दूर-समाज के सुख की अभिवृद्धि हो सकती है। किन्तु इस लाभप्रद स्पर्धा और बढ़ाचढ़ी की भावना को जागृत तथा व्यवस्थित करने का प्रयत्न होना चाहिए।

'सोवियत सरकार के कर्तव्य' नामक अपने निबन्ध में लेनिन ने कहा है कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के निर्माण तथा समाजवादी-उत्पादन संबंधों की रचना के लिए यह आवश्यक है कि स्पर्धा को समाजवादी रीति से व्यवस्थित किया जाये। लेनिन ने श्रम की उत्पादन-शक्ति को बढ़ाने पर अधिक ज़ोर दिया है, क्योंकि उनका ख्याल था कि अन्ततोगत्वा इसी के आधार पर नई व्यवस्था की विजय घोषित हो सकेगी।

गृह-युद्ध के काल में (१९१८—२१) तथा नई आर्थिक योजना के प्रारम्भिक वर्षों में (१९२१—२५) लेनिन ने श्रम के प्रति नवीन साम्यवादी दृष्टिकोण तथा नवोदित समाजवादी अनुशासन को भरसक प्रोत्साहित किया। सन् १९१९ के वसन्त में लेनिन ने मास्को-काज़न रेल-मार्ग के निर्माता अग्रणी मज़दूरों की यह कह कर देश में काफ़ी चर्चा की कि वह प्रथम समाजवादी सूबौंतनिक (कार्यकर्ता) हैं। अपने लेख 'महान प्रारम्भ' और कुछ अन्य रचनाओं में जो कि इसी विषय से संबंधित थी, उन्होंने यह दिखाया है कि इस प्रकार के लोकहितकारी साहसिक तथा निष्काम कर्म में ही साम्यवादी व्यवस्था के बीज हैं। उन्होंने लिखा है :

"साम्यवाद का प्रारम्भ उसी समय होता है जब साधारण कमकरों में एक ऐसी आत्म-बलिदानी भावना परिलक्षित होती है जो श्रम की उत्पादन-शक्ति की अभिवृद्धि-विरोधी सभी तत्वों को हमवार कर देती है।

साधारण कमकरों की आत्म-बलिदानी भावना ने समाज-

वादी औद्योगीकरण में आश्चर्यजनक परिणाम उपस्थित किए हैं। गृह-युद्ध के समय में इसने लाल-सेना की शक्ति बढ़ाई थी और महायुद्ध के बाद की बर्बादी को थोड़े ही समय में दूर कर दिया था।

जब जनता के विशाल समूह ने देश की पिछड़ी हुई अवस्था को अन्त करने, तमाम पूँजीवादी तत्वों को नष्ट करने तथा समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की नींव डालने का बीड़ा उठाया था, उस समय विद्युतगति और समाजवादी स्पर्धा का अभूतपूर्व विकास हुआ था। सन् १६२६ की २६ अप्रैल को सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के सोलहवें सम्मेलन ने, जिसने प्रथम पंचवर्षीय योजना का श्रीगणेश किया था, सोवियत संघ के कमकरों तथा खेतिहरों से समाजवादी स्पर्धा को स्वीकार करने का अनुरोध किया था। फलस्वरूप समस्त सोवियत देश के विभिन्न ज़िलों, उद्योगों, कारखानों, खानों और कारखानों के विभिन्न विभागों तथा व्यक्तियों ने सबसे अच्छा और सबसे जल्दी काम करने की चुनौतियाँ स्वीकार की थीं।

जिस प्रकार लेनिन ने सुवातनिकों (कार्यकर्ताओं) का स्वागत साम्यवाद की प्रथम किरणों के रूप में किया था, उसी प्रकार स्तालिन ने मज़दूर-वर्ग के इस विशेष उत्साह को सन् १६२६ के महान् परिवर्तन के दिनों में साम्यवाद की स्थापना के लिये अभिनंदित किया था। उन्होंने इसे श्रम की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने वाली पहली अँगड़ाई माना था जो पूँजीवाद पर साम्यवाद की विजय-प्राप्ति की सूचक थी।

उस समय कुछ लोगों की यह धारणा थी कि समाजवादी स्पर्धा का आन्दोलन अन्य समकालीन आन्दोलनों की ही तरह कुछ समय तक अंधाधुंध चलेगा और फिर ठप हो जायगा। किन्तु स्तालिन ने इस विचार का दृढ़ विरोध किया था और वह

सिद्ध किया कि समाजवादी स्पर्धा चिर-महान् और चिर-जीवी धारा है। उन्होंने कहा कि समाजवादी स्पर्धा "समाजवाद के निर्माण की साम्यवादी रीति" है। सन् १९३० में होने वाले बोल्शेविक पार्टी के सोलहवें सम्मेलन में उन्होंने नए औद्योगिक सम्बन्धों की उत्पत्ति, नये सामाजिक संबंधों के निर्माण तथा समाजवादी स्पर्धा के प्राथमिक परिणामों पर अपने विचार प्रकट किए थे। उन्होंने कहा था :

"स्पर्धा की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसने श्रम के संबन्ध में मनुष्य के विचारों में एक क्रान्ति उपस्थित कर दी है; उसने श्रम को, जो पहले एक अपमानजनक तथा कष्टदायक भार समझा जाता था, आज एक सम्मान की, प्रशंसा की तथा वीरता की वस्तु बना दिया है।"

समाजवाद के निर्माण-कार्य में मिलने वाली प्रत्येक सफलता ने समाजवादी स्पर्धा की भावना को और आगे बढ़ाया है, एवम् यह और भी स्पष्ट रूप में प्रत्यक्ष कर दिया है कि शोषण की व्यवस्था से मुक्त होने पर श्रम में प्रभूत कार्य-शक्ति आ जाती है। उत्पादन के साधनों पर जन-स्वामित्व की स्थापना से तथा उत्पादन में समाजवादी सम्बन्धों के दृढ़ होने से पूँजीपति वर्ग के विचारकों का यह कथन असत्य प्रमाणित हो गया है कि श्रम सदा ही अनिच्छा से किया जाता है। घृणा, असंतोष और अनिच्छा से किया हुआ श्रम कार्य में द्रुत गति, समाजवादी स्पर्धा तथा 'स्ताख़ानाव' आन्दोलन को जन्म नहीं दे सकता है। इस प्रकार के आन्दोलन समाजवादी स्वतन्त्र श्रम से ही उत्पन्न हो सकते हैं क्योंकि ऐसा श्रम आनन्ददायक तथा जीवन को पूर्णता देने वाला होता है।

जब स्तालिन की पंचवर्षीय योजना के परिणाम-स्वरूप सोवियत भूमि को नवीनतम मशीनें प्राप्त हो गई और जब

पुरुषों तथा स्त्रियों को उनका उपयोग करना तथा सुधारना आ गया, तब 'स्ताखानाव' आन्दोलन का उदय हुआ। इस आन्दोलन का जन्म स्तालिन के उस अनुरोध के परिणाम-स्वरूप हुआ था, जिसमे उन्होंने कार्य-शैली पर अधिकार प्राप्त करने के लिए कहा था और साथ ही साथ यह भी कहा था कि उन लोगों का विशेष ध्यान रखा जाय जो कार्य-शैली में दक्षता पाने की कोशिश कर रहे हैं। स्तालिन के इसी अनुरोध को स्वीकार कर 'स्ताखानाव' नाम के एक व्यक्ति ने, जो खान में काम करता था, अपने काम में सम्पूर्ण दक्षता प्राप्त की और उसके फलस्वरूप उसने कोयले की उत्पत्ति चौदह गुनी बढ़ा दी थी। उसके द्वारा उपस्थित किए गए उदाहरण का और लोगों ने अनुकरण किया। इस प्रकार 'स्ताखानाव' आन्दोलन का जन्म हुआ। यह सब स्तालिन के अनुरोध के फलस्वरूप हुआ था, इसलिए 'स्ताखानाव' आन्दोलन को मानने वाले सभी व्यक्तियों को स्तालिन का शिष्य कहना चाहिए। स्तालिन ने इस आन्दोलन के लिए कहा है कि यह समाजवादी स्पर्धा का एक उत्कृष्ट रूप है; इस प्रकार उसका ऐतिहासिक मूल्य उन्होंने निर्धारित किया है, क्योंकि यह समाजवादी व्यवस्था को आगे बढ़ा कर साम्यवादी व्यवस्था की ओर ले जाता है। स्ताखानाव आन्दोलन ने उत्पादन की रीतियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर श्रम की उत्पादन शक्ति को उस अवस्था से आगे बढ़ाने में सहायता पहुँचाई है, जितनी कि वह पूँजीवाद में थी; और यही साम्यवाद की प्राप्ति की निर्णायक आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त 'स्ताखानाव' आन्दोलन ने यह भी साबित किया है कि इस उच्चतर स्थिति में पहुँचने के लिए दूसरी आवश्यक अवस्था—शारीरिक तथा बौद्धिक श्रम के अन्तर्विरोध की समाप्ति—कैसे प्राप्त की जा सकती है।

स्तालिन ने पूँजीवादी प्रतियोगिता तथा समाजवादी बढ़ाचढ़ी

की भावना के आधारभूत अन्तर पर ज़ोर दिया है। उन्होंने लिखा है :

"कभी-कभी लोग समाजवादी स्पर्धा तथा साधारण प्रतियोगिता दोनों को ही समान समझने लगते हैं। यह एक बहुत बड़ी भूल है। समाजवादी स्पर्धा तथा साधारण प्रतियोगिता सर्वथा भिन्न सिद्धान्तों पर आधारित हैं। साधारण प्रतियोगिता के सिद्धान्त में एक को पराजय तथा मौत का शिकार बनना पड़ता है और दूसरा विजय तथा प्रभुत्व पाता है। पर समाजवादी स्पर्धा का सिद्धान्त है : आगे बढ़े हुए लोगों को पीछे रह गए लोगों की सहायता करनी चाहिए जिससे कि बहुमुखी उन्नति हो। साधारण प्रतियोगिता प्रेरित करती है कि जो पीछे छूट जाँय उन्हें कुचल कर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लो। समाजवादी स्पर्धा प्रेरणा देती है : कुछ ख़राब काम करते हैं, कुछ अच्छा करते हैं, कुछ और भी अच्छा करते हैं; जो सबसे अच्छा काम करने वाले हैं उनका साथ करो और इस प्रकार बहुमुखी उन्नति प्राप्त करो। समाजवादी स्पर्धा के फलस्वरूप ही मज़दूरों के विशाल समूह में असीम उत्साह दिखाई देता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि साधारण प्रतियोगिता इस प्रकार का जन-जोश नहीं उत्पन्न कर सकती है।

समाजवादी स्पर्धा में ऐसी शक्ति होने का कारण यह है कि समाजवाद की विजय से उदाहरण में एक अजीब प्रेरक शक्ति आ गई है।

क्या पूँजीवाद में भी उदाहरण इतने ही प्रभावशाली होते हैं? क्या यह कल्पना भी की जा सकती है कि पूँजीवादी उद्योग में काम करने वाला मज़दूर अपने आप सम्पूर्ण मन से अपने उस साथी के उदाहरण से प्रेरणा ग्रहण करेगा जिसने किसी कारणवश साधारण से दूना काम कर दिखाया

है? कभी नहीं। इसके विपरीत मज़दूर वर्ग उस व्यक्ति को जो ज्यादा काम कर दिखाता है घृणा की दृष्टि से देखेगा और उसे अपना शत्रु समझेगा। कारण, पूँजीवादी समाज में इस प्रकार काम ज्यादा हो जाने से मज़दूर वर्ग का लाभ नहीं होता वरन् उसके शत्रु पूँजीपतियों का लाभ होता है। पूँजीपति उस बढ़े हुए काम से यह फ़ायदा उठाते हैं कि जो कम काम करने वाले हैं, उनकी तनख्वाहें कम कर देते हैं जिससे कि लोग अपने काम को बढ़ाने की कोशिश करें; जो इस दौड़ में आगे नहीं बढ़ पाते उन्हें निकाल दिया जाता है। इस सब का परिणाम यही होता है कि पूँजीपति और भी अमीर हो जाता है और मज़दूर और ग़रीब। श्रम की उत्पादन शक्ति के बढ़ने से सम्पूर्ण लाभ तो पूँजीपति को मिलता है; मज़दूरों का उसमें कुछ भी नहीं।

समाजवादी व्यवस्था में इसके विपरीत देखने को मिलता है। सोवियत संघ में आगे बढ़कर काम करने वाले स्त्री पुरुषों के उदाहरण तथा उनके द्वारा उपस्थित की गई उत्पादन की रीतियों की नवीनताएँ करोड़ों व्यक्तियों को उनसे स्पर्धा करने के लिए प्रेरित करती हैं। आगे बढ़कर काम करने वालों का सभी सम्मान करते हैं। सोवियत संघ की प्रधान परिषद् के अध्यक्ष कालिनिन ने कहा है: "इस प्रकार के लोगों की हम प्रशंसा करते हैं; हम उन्हें ख़िताब और तमगे देते हैं; हम सोवियत के श्रेष्ठ नागरिकों के रूप में उनका सम्मान करते हैं और पुरस्कार देते हैं।"

सोवियत संघ का मज़दूरवर्ग एक बिलकुल नये ढंग का मज़दूर वर्ग है; समाज में वैसा वर्ग पहले कभी नहीं रहा है। वह एक ऐसा मज़दूरवर्ग है जिसने शोषण के बन्धनों को नष्ट कर डाला है और स्वयं ही अपने जीवन तथा भाग्य का निर्माता बन गया है। वह सोवियत संघ में काम करने वाले सभी लोगों का नेतृत्व करता

है जो समाजवादी व्यवस्था को विकसित और पुष्ट करने में प्रयत्नशील हैं।

सोवियत संघ का मजदूरवर्ग एक चतुर गृह-स्वामी की भाँति व्यवहार करता है। उसका घरबार विशाल सोवियत भूमि है। सोवियत भूमि का मजदूरवर्ग अपने यहाँ के अन्य काम करने वालों के साथ समस्त जन-सम्पत्ति तथा विशाल धन का स्वामी है और वह इस सामाजिक जन-सम्पत्ति की, जो कि सोवियत समाज का आर्थिक आधार है, वास्तविक देख-रेख सच्चे मालिक का हैसियत से करता है।

श्रम करने का अधिकार और कर्तव्य

समाजवाद ने मजदूरवर्ग के स्वप्न को सत्य कर दिया है: उसने श्रम करने के अधिकार को प्रतिष्ठापूर्ण बना दिया है। समाजवाद की विजय के फलस्वरूप सोवियत संघ में बेकारी बिलकुल खतम हो गई है।

पूँजीवादी व्यवस्था में बेकारी का होना अनिवार्य है। यह व्यवस्था स्वयं बेकारी उत्पन्न करती है। इसमें संकटों का होना भी अनिवार्य है। इन संकटों में हजारों और आजकल के दिनों में तो लाखों व्यक्तियों को काम से वंचित कर दिया जाता है।

जब संकट का समय बीत जाता है और उद्योग-धन्धे फिर चलने लगते हैं तो बेकारों की बहुत बड़ी संख्या में से कुछ को फिर काम मिल जाता है। इस प्रकार बेकारों की एक अतिरिक्त फ़ौज सदा खड़ी रहती है जिससे पूँजीपति जब चाहें तब अपने उद्योग-धन्धों के लिए और कुमुक संग्रह कर सकते हैं। इन बेकारों से पूँजीपतियों का एक और विशेष कार्य निकलता है। भूख से परेशान होकर ये बेकार लोग किसी भी वेतन पर काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। पूँजीपति इससे लाभ उठाकर काम के

घंटे बढ़ा देते हैं, वेतन कम कर देते हैं और मज़दूरों के रहन सहन को और भी चौपट कर देते हैं।

बेकारों की संख्या-वृद्धि पूँजीवादी उत्पादन के नियमों की ही विशेषता है। पूँजीपतिवर्ग के हाथ में जैसे-जैसे धन बढ़ता जाता है, वैसे वैसे दूसरे भाग में ग़रीबी और परेशानियाँ बढ़ती जाती हैं। सर्वहारा वर्ग का व्यक्ति अपने जन्म-दिन से लेकर मृत्यु पर्यन्त अपने भविष्य के सम्बन्ध में चिन्तित रहता है; उसे सदा ही काम से अलग कर दिए जाने का भय बना रहता है।

उदाहरणस्वरूप ब्रिटेन में १९०० से लेकर १९१५ तक ४ फ़ी सदी लोग बेकार थे; १९२० से लेकर १९२९ तक १०.९ फ़ी सदी लोग बेकार रहे; और १९३० से १९३६ तक १७.८ फ़ी सदी लोग। १९४० में जब महायुद्ध ज़ोरों पर चल रहा था, तब भी १० फ़ी सदी लोग बेकार थे। अगर हम पिछले पन्द्रह वर्षों की बेकारी का औसत निकालें तो मालूम होगा कि प्रत्येक वर्ष सात मज़दूरों में से एक बेकार रहा।

संयुक्त राष्ट्र में १९०३ से १९०७ तक औसतन बेकारी ७.३ फ़ी सदी थी, १९०७ से १९१३ तक यह औसत १०.१ फ़ी सदी बढ़ गया; १९२० से १९२९ तक १३.६ फ़ी सदी; और १९३० से १९३६ तक ३७.७ फ़ी सदी बढ़ गया। अमरीकी मज़दूर-संघ की गणना के आधार पर १९३२-३३ में जब औद्योगिक संकट अपनी चरम सीमा पर था, इस संघ में सम्मिलित संस्थाओं के प्रति तीन सदस्यों में एक बेकार था। १९३४ और १९३५ के वर्षों में जब संकट समाप्त हो गया था, प्रति चार सदस्यों में एक बेकार था। १९४० के पहले भाग में प्रति पाँच सदस्यों में एक बेकार था; और महायुद्ध जब ज़ोरों से चल रहा था तब भी संयुक्त राष्ट्र में १०० लाख मज़दूर बेकार थे।

सन् १९३३ में प्रमुख पूँजीवादी देशों में बेकारों की

संख्या ३०० लाख थी। १९३७ में, नये विश्व-संकट के पूर्व, वह १४० लाख ही रह गई थी, किन्तु उसी वर्ष के मध्य भाग से फिर वह तेज़ी से बढ़ने लगी और १९३९ तक सरकारी गणना के अनुसार १८० लाख तक पहुँच गई।

सरकारी फ़ेहरिश्तों में दर्ज लाखों बेकार, करोड़ों बेकार जो उन फ़ेहरिश्तों में नहीं लिखे हैं और लाखों की संख्या में भूखों मरने वाले किसान जो कि अपने बर्बाद खेतों से बंधे हैं और बेकारों की एक बड़ी 'छिपी हुई' सेना की तरह हैं—यह सब इस बात के प्रमाण हैं कि पूँजीवादी देशों में काम करने का अधिकार कहाँ तक सम्मान्य है।

समाजवाद ने मज़दूरों के विशाल समूह को सोवियत संघ में इस बेकारी के अभिशाप से मुक्ति दे दी है। सोवियत संघ के प्रत्येक नागरिक को सोवियत विधान के अनुसार काम करने का अधिकार प्राप्त है। सोवियत विधान "केवल इस काम करने के अधिकार की घोषणा ही नहीं करता, वरन् इसको व्यवहाररूप से स्वीकार करता है। सोवियत समाज में न संकट आते हैं और न बेकारी है। सोवियत संघ के मज़दूर अपने भविष्य के सम्बन्ध में विश्वस्त हैं और उन्हें यह भय नहीं है कि वह कल दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंके जायँगे।"

पूँजीवादी समाज में अधिकारों का उपभोग पूँजीपति-वर्ग के थोड़े से लोग करते हैं और शोषितों के विशाल समूह को अनेक कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। समाजवाद ने अधिकार और कर्तव्य के बीच की खाँई को पाट दिया है। समाजवादी व्यवस्था में दोनों का पूर्ण समन्वय हो गया है। वैज्ञानिक समाजवाद के संस्थापक मार्क्स और एंजिल्स ने इस परिस्थिति को पहले से ही समझ लिया था। उदाहरणस्वरूप सन् १८९१ में एंजिल्स ने जर्मनी की सामाजिक प्रजातन्त्रवादी

संख्या के कार्य-क्रम की आलोचना करते हुए यह सुझाव पेश किया था कि "प्रत्येक के लिए समान अधिकार" के अस्पष्ट सूत्र की जगह "सभी के लिये समान अधिकार और समान कर्तव्य" की स्पष्ट माँग होनी चाहिये। इसका निरूपण करते हुये ऐंजिल्स ने लिखा है: "हमारे लिए समान कर्तव्य के सिद्धान्त को पूँजीवादी-प्रजातन्त्र के समान अधिकार के सिद्धान्त से जोड़ना ज़रूरी है, क्योंकि फिर बाद वाले सिद्धान्त का पूँजीवादी अभिप्राय समाप्त हो जाता है।

यह साफ़ है कि ऐंजिल्स ने पूँजीपतियों के 'समान अधिकार' की हवाई बातचीत से समाजवादी कार्यक्रम की भिन्नता दिखाने के लिए 'समान कर्तव्य' की माँग को आवश्यक समझा था। यह सभी जानते है कि पूँजीवादी व्यवस्था में अधिकारों की सैद्धान्तिक समानता के साथ साथ भयंकर व्यवहारिक असमानता देखने को मिलती है: अच्छी तरह खाते-पीते लोग तथा मरभुखे, शोषक तथा शोषित। दरअसल पूँजी-पति 'समान कर्तव्यों' से डरते हैं। मज़दूरों के जीवन भर पिसाई करते रहने के 'कर्तव्य' और पूँजीपतियों के कर्महीन होकर उस धन को बर्बाद करने के 'कर्तव्य' में, जो जबरन श्रम करा कर उत्पन्न किया गया है, कोई समानता नहीं हो सकती।

समाजवादी व्यवस्था में सभी नागरिकों के निश्चित अधि-कार होते हैं और निश्चित कर्तव्य भी जिनकी पूर्ति से उनके अधिकारों की रक्षा होती है। सोवियत संघ में प्रत्येक के लिए काम करने का अधिकार स्वीकृत है और प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि उस कार्य को जो वह कर रहा है पूरी लगन तथा ईमानदारी के साथ करे। यह सम्बंध जो काम करने के अधिकार तथा सामाजिक कार्य में भाग लेने के कर्तव्य में है सोवियत विधान में भली प्रकार अभिव्यंजित हुआ है।

सोवियत विधान की १२ वीं धारा इस प्रकार है :—

"सोवियत राष्ट्र-संघ में इस सिद्धान्त के आधार पर कि 'जो काम नहीं करता उसे खाना भी नहीं खाना चाहिए' श्रम प्रत्येक काम कर सकने योग्य पुरुष के लिये एक कर्तव्य और सम्मान की वस्तु है।

"सोवियत राष्ट्र-संघ में 'प्रत्येक से उसकी योग्यता के अनुसार, पर प्रत्येक को उसके कार्य के अनुसार' का समाजवादी सिद्धान्त मान्य है।"

धारा ११८ इस प्रकार है:—

"सोवियत राष्ट्र-संघ में नागरिकों को काम करने का अधिकार प्राप्त है, अर्थात् उन्हें काम मिलने तथा काम के परिमाण और गुण के अनुसार वेतन मिलने का निश्चित अधिकार है।

"काम मिलने का अधिकार राष्ट्र की समाजवादी आर्थिक व्यवस्था, सोवियत समाज में उत्पादन-शक्तियों के निरन्तर विकास, आर्थिक संकटों की असंभावना तथा बेकारी के अन्त के आधारों पर सुरक्षित है।"

उत्पादन की समाजवादी व्यवस्था में ऐसा नहीं होता कि मजदूर के माथे सिर्फ श्रम और विश्राम दूसरों के लिए हो। समाजवादी व्यवस्था में यह असम्भव है कि समाज का एक वर्ग तो आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करे और दूसरे वर्ग का सम्पूर्ण जीवन निरन्तर श्रम में ही व्यय हो जाय। सोवियत संघ के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह सम्पूर्ण समाज के हित के लिए पूरी ईमानदारी से कार्य करे। समाजवाद ने शोषक-वर्ग को समाप्त कर आमंत्रित आलस्य और पेशे के रूप में स्वीकृत आरामतलबी की आदत को खतम कर दिया है। इसके साथ ही उसने जबरन लादे गये आलस्य को, बेकारी को और उस अभिशापमय

आलस्य को खतम कर दिया है जो पूँजीवाद में लाखों करोड़ों व्यक्तियों को अपना शिकार बना लेता है।

"जो काम नहीं करता उसे खाना भी नहीं चाहिए" इन शब्दों में वह समाजवादी सिद्धान्त मूर्तमान है जिसके अनुसार श्रम करना व्यापक कर्तव्य है और यह सिद्धान्त मनुष्य के इतिहास में पहली बार सोवियत संघ में व्यवहृत किया जा रहा है।

प्रत्येक नागरिक को न सिर्फ काम पाने का अधिकार है बल्कि इस अधिकार के उपयोग के लिए अवसर भी मिलते हैं। उसके लिये बहुत संभावनायें हैं कि वह अपने अध्ययन और कला-कुशलता को बढ़ा कर अपनी आमदनी बढ़ा सके। समाजवादी व्यवस्था में शोषण-मुक्त श्रम ने मजदूर वर्ग की अनेक पीढ़ियों के स्वप्न को सच कर दिया है।

श्रम के समाजी संगठन के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक पुरुप के काम और उपभोग पर सख्त नियंत्रण हो। लेनिन ने लिखा है:

"समाजवाद का मतलब है बिना पूँजीपतियों की सहायता के काम का होना, उसका तात्पर्य है मजदूर वर्ग के सबसे आगे बढ़े हुए लोगों द्वारा अनुशासित और निरीक्षित सामाजिक श्रम का किया जाना। इसके अलावा उसका यह भी मतलब है कि काम करने का पैमाना और काम करने का पारिश्रमिक भी निश्चित हो।

समाजवादी श्रम-अनुशासन

प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था श्रम के अनुशासन के आधार पर चलती है। यह अनुशासन उस सामाजिक व्यवस्था के ही अनुकूल होता है। लेनिन ने सही लिखा है कि सामन्तवादी व्यवस्था

में श्रम का अनुशासन लाठी के बल पर होता है और पूँजीवाद में पेट की मार से; परन्तु साम्यवादी व्यवस्था में, जिसे पाने के लिये समाजवाद की राह से होकर जाना पड़ता है, श्रम का अनुशासन कमकरों की स्वेच्छा और सजगता पर ही निर्भर रहता है। इस प्रकार समाजवादी श्रम-अनुशासन पूर्वगामी अनुशासनों से मूलतः भिन्न है।

मार्क्स ने 'कैपिटल' (पूँजी) में उस प्रणाली का बड़ा सजीव चित्रण किया है जिसके द्वारा पुरातन सामन्तवादी व्यवस्था के ध्वंसों से पूँजीवादी श्रम-अनुशासन का विकास हुआ है। सदियों तक आम जनता पर खूनी क़ानून लागू रहे थे, जिनसे परेशान हो वह अपना घरबार छोड़ देश भर में यहाँ-वहाँ भागी-भागी फिरती रही थी। जिन लोगों ने पूँजीवादी शोषण को सहर्ष स्वीकार नहीं किया क़ानून उन्हें कोड़ों की सज़ा देता था। पूँजीपतियों ने वांछित श्रम-अनुशासन पैदा करने के लिये इस प्रकार के बर्बर क़ानून अनेक वर्षों तक जारी रखे थे। अन्ततः मशीनों के इस्तेमाल और बेकारी की बढ़ती से मज़दूर भूख से मजबूर हो पूँजीवादी शोषण का पूरा शिकार हो गये। भूख और ग़रीबी ने मज़दूरों को मजबूर कर दिया कि वह पूँजी की शत्रु-शक्ति को स्वीकार करें। जैसा मार्क्स ने कहा है : "आर्थिक संबंधों से पैदा हुई विवशताओं ने मज़दूरों को पूँजीपतियों का पूरा गुलाम बना दिया।" मार्क्स ने इस गुलामी का निम्नलिखित दर्दनाक उदाहरण दिया है :

"सन् १८६३ की जून महीने के आखिरी सप्ताह में लंदन के तमाम दैनिक पत्रों ने मेरी ऐन वाकले की मृत्यु का समाचार यह सनसनीखेज़ शीर्षक लगाकर छापा कि 'अधिक काम से मौत'। मेरी २० साल की थी और एक प्रतिष्ठित कपड़ा सिलनेवाले फ़र्म में काम करती थी। मेरी औसतन साढ़े सोलह घंटे रोज़

काम करती थी और मौसम में तो अक्सर तीस घंटे लगातार काम करना पड़ता था। आजकल भद्दर सिलाई का मौसम था। मेरी ने लगातार बिना अवकाश लिये साढ़े छब्बीस घंटे तीस अन्य लड़कियों के साथ एक ऐसे कमरे में काम किया जिसमें केवल नाम के लिये हवा आती थी। रात को ये लड़कियाँ दो दो एक साथ लकड़ी के उन तंग दरबों में सोती थीं जिनमें सोने का कमरा बटा हुआ था।…मेरी शुक्रवार को बीमार पड़ी और इतवार के दिन मर गई।………डाक्टर कीज़ महोदय बहुत देर कर मृत्यु-शय्या के पास पहुँचे थे। उन्होंने पंचों के सामने यह बयान दिया कि मेरी की मृत्यु एक छोटे से भीड़ भाड़ के कमरे में अधिक समय तक काम करने तथा एक बेहवादार कमरे में सोने से हुई है।"

यह घटना पूँजीवादी देशों के इतिहास में पाई जाने वाली इसी प्रकार की हज़ारों लाखों घटनाओं में से एक है। कार्याधिक्य के कारण मरे हुए पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों की लाशों पर विजय-गर्व से क़दम रखते हुए पूँजी आगे बढ़ती है।

मेरी को मरे आज लगभग अस्सी वर्ष हो चुके हैं; किन्तु इस बीच पूँजीपतियों की मुनाफ़े की चाह सैकड़ों गुना बढ़ गई है। श्रम-अनुशासन के पूँजीवादी तरीक़े पूँजीवादी उत्पादन-विधान के अन्तर्विरोध से बने हैं। वे उत्पादन की सामाजिकता और पूँजीपतियों की मुनाफ़ा उड़ाने की नीति के अन्तर्विरोध से उत्पन्न हुए हैं। पूँजीवाद का यह आधारभूत अन्तर्विरोध, समस्त विश्व को प्रभावित करने वाले और समय-समय पर होने वाले व्यापारिक संकटों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है; वैसे भी वह पूँजीवादी समाज के प्रत्येक दिन के क्रिया-कलाप में और कारख़ानों की रोज़मर्रह की ज़िन्दगी में देखा जा सकता है।

पूँजीपतियों के विनाश तथा पूँजीवादी शोषण की समाप्ति से ही सामाजिक उत्पादन और व्यक्तिगत लाभ के विरोध को खतम किया जा सकता है और इसके साथ ही श्रम के उस पूँजीवादी अनुशासन को भी खतम किया जा सकता है जो भूख की मार तथा मजदूरों की दासता पर आधारित है।

समाजवाद श्रम की जिस नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करता है वह श्रम के समाजवादी अनुशासन को जन्म देती है। पर यह समाजवादी अनुशासन, जैसा लेनिन ने कहा है, केवल पवित्र इच्छाओं से ही नहीं उत्पन्न होता। वह आकाश से बना बनाया नहीं आता। वह ऐसे भीषण संघर्ष से पैदा होता है जिसमें मजदूर-वर्ग का एकाधिपत्य मजदूरों के विशाल समूह को उपदेशों तथा उदाहरणों से पुनः शिक्षित करता है। अपने इस प्रयत्न में मजदूर-वर्ग समाजवादी अनुशासन को तोड़ने का प्रयत्न करने वालों के साथ दबाव का प्रयोग भी करता है।

सोवियत शासन के प्रारम्भिक दिनों में ही लेनिन ने कठोर समाजवादी अनुशासन की स्थापना को उस समय के प्रमुख कार्यों में माना था। अपने निबन्ध "सोवियत सरकार के तात्कालिक कार्य" में उन्होंने लिखा है :

"प्रत्येक समाजवादी क्रान्ति में जब सर्वहारा राजसत्ता पर विजय प्राप्त कर लेता है तथा जबरन जायदाद छीनने वालों से जायदादें वापस ले लेता है, तब पूँजीवादी व्यवस्था से अधिक उन्नत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का प्रश्न उठता है, जिसका तात्पर्य है : श्रम की उत्पादन शक्ति को बढ़ाना तथा साथ ही श्रम को और भी अधिक व्यवस्थित करना।"

अपने निबन्ध 'महान् प्रारम्भ' में लेनिन ने लिखा है कि सर्वहारा को अपना एकाधिपत्य स्थापित करने के बाद भूख के द्वारा परिचालित होने वाले अनुशासन के स्थान पर "......मज़

उन्नत सामाजिक संबंधों, और सामाजिक अनुशासन का निर्माण करना चाहिये। ऐसे वर्ग-सजग और संयुक्त कमकरों का अनुशासन पैदा करना चाहिये जो किसी तरह की गुलामी को नहीं मानते तथा अपनी एकता और अपने अधिक वर्ग-चेतना प्राप्त, साहसी, सुदृढ़, क्रान्तिकारी तथा अग्रगामी पार्टी की हुकूमत को छोड़ कर और किसी की हुकूमत को नहीं मानते।

अपने निबन्ध 'सोवियत सरकार के तात्कालिक कार्य' में उन्होंने फिर कहा है : "सहजोत्पन्न मध्यवित्त-अराजकता के स्थान पर सजग सर्वहारा-अनुशासन की प्रतिष्ठा के बिना समाजवाद की विजय की कल्पना भी नहीं की जा सकती।" उन्होंने उन लोगों के साथ कठोर संघर्ष करने के लिए कहा था जो समाजवादी अनुशासन तोड़ने का प्रयत्न करते हों, मध्यवित्त अराजकता के पोषक हों, आलसी और कामचोर हों और समाज को सबसे कम देकर सबसे अधिक लेना चाहते हों। इस काम में किसी प्रकार की झिझक, कमज़ोरी अथवा भावुकता समाजवाद के प्रति अपराध होगी।"

समाजवाद आदर्शवादी व्यक्तियों द्वारा नहीं वरन् पूँजीवादी व्यवस्था में पले हुए स्त्री-पुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित होता है। इस तथ्य पर ही वह विधान आधारित है जिससे पूँजीवाद के विनाश के बाद श्रम के प्रति स्त्रियों तथा पुरुषों के दृष्टिकोण को बदला जा सकता है। लेनिन ने कहा है कि "श्रमिकों के आचारों तथा व्यवहारों को बदलने में कितने ही साल लग जायँगे। उन आचारों को जो शताब्दियों के शोषण द्वारा निर्मित हुए हैं मूलतः बदलना पड़ेगा, क्योंकि पूँजीवादी समाज ने हमारे लिए इस तरह की कमज़ोरियाँ छोड़ी हैं जैसे असंगठित श्रम, समाज की आर्थिक व्यवस्था में अविश्वास, छोटे कारोबार करने वालों की ऐसी पुरानी आदतें जो सभी कृषि-प्रधान देशों में मिलती हैं। छोटे

कारोबारों से संबंधित पुरानी आदतों के छोड़ने की आवश्यकता को लेनिन ने भली प्रकार समझा था। इसीलिए उन्होंने कम्यूनिस्ट 'सुबातनिकों' को नवीन जीवन्त सिद्धान्त की अभिव्यंजना कहा था। इन सूबातनिकों के संबंध में उन्होंने लिखा है:

"यह एक ऐसी क्रान्ति का प्रारम्भ है जो पूँजीवाद के उन्मूलन से कहीं अधिक मुश्किल, अधिक सृजनात्मक, अधिक उग्रवादी और अधिक निर्णायक है; क्योंकि यह व्यक्तिगत अनुदारता, अनुशासन-हीनता और मध्यवित्त-अहं पर विजय है। यह उन आचारों पर विजय है जिन्हें अभिशप्त पूँजीवाद किसानों तथा मज़दूरों के लिए वसीयत कर गया है।

आदत में प्रचंड शक्ति होती है, क्योंकि उसकी जड़ें शताब्दियों के दमन और पुराने समाज में जमी हुई हैं जो "इस सिद्धान्त पर आधारित है कि लूटो अथवा लूटे जाओ, दूसरों के लिए काम करो अथवा काम कराओ, स्वामी बनो अथवा दास। अत्याचार की छाया में युगों तक जीवन व्यतीत करने के बाद मज़दूरों में कठोर श्रम से भागने की इच्छा का उत्पन्न होना, चाहे थोड़े समय के लिए ही हो, और अपने तथा अपने परिवार के जीवन-यापन के लिए आसान रास्तों का खोजना स्वाभाविक ही हैं।

इतिहास बताता है कि उत्पादन के नए तरीक़े एकबारगी नहीं बन गए थे वरन् उनके लिए पुराने सामाजिक संबंधों, आचारों तथा व्यवहारों से निरन्तर संघर्ष करना पड़ा था। हमें यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि पुरानी आदतों की ऐंठन क्रान्ति के बाद फ़ौरन ही नहीं ख़तम हो जाती वरन् नए उत्पन्न होने वाले आचारों पर कुछ समय तक अपनी प्रभुता दिखाती चलती है। इस प्रसंग पर लेनिन ने लिखा है :

"नूतन के जन्मते ही पुरातन नहीं मर जाता। कुछ के लिए

वह नवीन से अधिक शक्तिमान होता है जैसा प्रकृति तथा सामाजिक जीवन में सदा ही देखने को मिलता है।"

उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि नवीन की देखभाल और अध्ययन सावधानी से करना चाहिये और ऐसे सभी प्रयत्न किए जाने चाहिए जिनसे वह विकसित हो सके।

सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण के महान् कार्य ने नए आचारों तथा व्यवहारों को जन्म दिया है जो सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन में भली प्रकार घुल मिल गए हैं। लेनिन की भविष्यवाणी आज सच्ची हो गई है। यह भली प्रकार पुष्ट हो गया है कि श्रम के प्रति नए दृष्टिकोण के निर्माण का कार्य मुश्किल और अधिक समय लेने वाला है।

समाजवादी व्यवस्था के निर्माण में मज़दूरों के श्रम-संबंधी आचार तथा व्यवहार कैसे बदलते हैं इसका सैद्धान्तिक विवेचन स्तालिन की रचनाओं में मिलता है। इस संबंध में स्तालिन ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के भण्डार को और भी समृद्धशाली किया है और समाजवाद के सैद्धान्तिक विकास को एक नई दिशा की ओर मोड़ा है। स्तालिन ने समाजवादी व्यवस्था के निर्माण की प्रत्येक अवस्था में सामाजिक श्रम के नवीन समाजवादी संगठन, तथा श्रम के समाजवादी अनुशासन की रीतियों को निर्धारित किया है। सन् १६२६ में स्तालिन ने कहा था :

"हमें अपने कारख़ानों में होने वाली ग़ैरहाज़रियों के ख़िलाफ़ जिहाद बोलना चाहिए, ताकि उत्पादन बढ़े और कारख़ानों में अनुशासन भी मज़बूत हो। इस ग़ैरहाज़री की आदत से सैकड़ों हज़ारों काम के दिन बर्बाद हो जाते हैं। फलस्वरूप लाखों करोड़ों का नुक़सान कारख़ानों को होता है। हम अपने उद्योग धन्धों को नहीं बढ़ा सकेंगे और न वेतन में ही बढ़ती हो सकेगी, अगर यह ग़ैरहाज़री की आदत नहीं छूटती और उत्पादन का

परिमाण नहीं बढ़ता। हमें मज़दूरों को समझाना चाहिए, विशेष कर उन मज़दूरों को जो कारखानों में नये-नये आये हैं, कि काम से गैरहाजिर होकर तथा उत्पादन न बढ़ा कर वे हमारे सर्वमान्य उद्देश्य के खिलाफ़, मज़दूर-वर्ग के हितों के विपरीत तथा उद्योग-धन्धों के विरोध में काम कर रहे हैं। अपने उद्योग-धन्धों के हित के लिए तथा सम्पूर्ण मज़दूर-वर्ग के लाभ के लिए श्रम की उत्पादन-शक्ति को बढ़ाना तथा गैरहाज़रियों का विरोध करना आज सबसे प्रमुख कार्य है।"

स्तालिन ने बार-बार सोवियत-संघ के आर्थिक प्रश्नों के हल तथा साम्यवादी समाज की ओर अग्रशील होने के लिए श्रम के अनुशासन पर विशेष ज़ोर दिया था।

यह सभी लोग भली प्रकार जानते हैं कि ट्राटस्कीवादी-बुखारिनवादी विध्वंसकों, गुमराह करने वालों तथा विदेशी सरकारों के हित में काम करने वाले गुप्तचरों के यह खास तरीक़े थे कि ईमानदारी और त्याग के साथ काम करने वाले मज़दूरों के खिलाफ़ आलसियों तथा कामचोरों को प्रोत्साहित किया जाय तथा श्रम के अनुशासन को कमज़ोर किया जाय। स्तालिन ने शत्रुओं की इन चालों का भण्डाफोड़ किया और बोल्शेविक पार्टी तथा सोवियत संघ की जनता को इन विध्वंस कार्यों का [illegible] विरोध करने के लिए जागरूक किया। समाजवादी व्यवस्था में मज़दूर-वर्ग के हित के लिए श्रम का अनुशासन होना आवश्यक है; यह श्रम-अनुशासन सजग और दिली होता है, यह मनुष्य की अपने कर्तव्य के प्रति जागरूकता है। जहाँ मनुष्य के शोषण को खतम किया जा चुका है, जहाँ की सामाजिक व्यवस्था में उत्पादन के साधन जनता की सम्पत्ति हो गए हैं और जहाँ मज़दूरों को अपनी रचनात्मक प्रतिभा विकसित करने के लिए पूर्ण अवसर तथा स्वतन्त्रता प्राप्त है, श्रम का अनुशासन व्यक्ति

की नहीं वरन् सम्पूर्ण समाज की समस्या है : वह एक सार्वजनिक प्रश्न है।

लेनिन के बताये हुये पथ पर चल कर तथा लाखों व्यक्तियों के क्रियात्मक अनुभव से लाभ उठाकर स्तालिन ने यह भी सिद्ध किया कि किसानों की आदतों और रिवाजों को भी बदला जा सकता है यद्यपि वे सदियों से अकेले ही काम करने के आदी रहे हैं और समाजवादी क्रान्ति के बाद पहिली बार उन्हें सामूहिक श्रम करने का अवसर मिला है। समाजवाद के शत्रुओं को किसानों की मध्यवर्गीय वैयक्तिक मनोवृत्ति पर विशेष विश्वास था, किन्तु उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। सोवियत संघ के किसान भी समाजवाद के लाल झन्डे के नीचे आ गए। किन्तु यह सोचना हानिकर होगा कि किसानों ने टुटपुंजिहा किसानी आदतों को सामूहिक खेतों में शरीक होते ही छोड़ दिया। मजदूर-वर्ग के एकाधिपत्य की स्थापना से जिस प्रकार समाज के समाजवादी रूपान्तर का केवल आरम्भ मात्र होता है, उसी प्रकार सामूहिक खेती से किसानों की जहनियत का बदलना और उनका समाजवादी वर्गहीन श्रमिकों में परिवर्तन होना शुरू होता है। उत्पादन-विधान के बदलने से मनुष्य की मनोवृत्ति पिछड़ गई है: इसीसे उन प्रयत्नों के महत्व को समझा जा सकता है जो सामूहिक खेतों पर काम करने वालों में व्यक्तिगत सम्पत्ति, टुटपुंजियों और मध्यवित्त की आर्थिक व्यवस्था से उत्पन्न हुई आदतों को दूर करने के लिए किए गए हैं।

जब समाजवाद से साम्यवाद की ओर बढ़ने का क्रम प्रारम्भ हो गया है और समाजवादी व्यवस्था का निर्माण-कार्य पूरा हो रहा है, उस समय नए समाज के निर्माताओं के मस्तिष्क से पूँजीवादी अवशेषों को दूर करना सबसे आवश्यक कार्य है। इसीलिए इस समय श्रम के समाजवादी अनुशासन का असाधारण

महत्व है। सोवियत-संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के अठारहवें अधिवेशन की रिपोर्ट में मोलोताफ़ ने कहा है :

"मज़दूरों के बीच भी कुछ आगे बढ़े हुये हैं, कुछ पिछड़े हुए हैं और कुछ निकम्मे हैं। किसानों में भी यही हाल है : कुछ आगे बढ़े हुए हैं और कुछ पिछड़े हैं। कुछ इनसे भी गये बीते हैं। हमारे युग के आगे बढ़े हुए लोग साम्यवाद के निर्माण में बड़े संलग्न हैं; इन्हीं लोगों के प्रयत्नों से हमारे राष्ट्र की नींव दृढ़ हो रही है। अधिकांश मज़दूर और किसान इन आगे बढ़े हुए लोगों का मन से अनुकरण कर रहे हैं। किन्तु मध्यवर्ग के बाबू लोगों की तो बात ही क्या, मज़दूरों में भी मध्यवित्त की आदतें अभी मौजूद हैं। अब भी कुछ ऐसे लोग हैं जो बिना सोचे समझे रियासत से ज्यादा से ज्यादा हथिया लेना चाहते हैं। इस लिए राष्ट्र के हित के लिए और दफ़्तरों तथा कारख़ानों में श्रम का अनुशासन रखने के लिए लुंगाड़ों, निकम्मे और अनुदिन काम बदलने वालों से संघर्ष करना आवश्यक है। कुछ किसान भी ऐसे हैं जो समाज की भलाई की ओर ध्यान नहीं देते, अपने सामूहिक खेतों के काम में भी ढिलाई करते हैं और राष्ट्र तथा सामूहिक खेतों को नुक़सान पहुँचा कर रुपया-पैसा, चीज़-वस्तु से अपना घर भर लेना चाहते हैं। इस सब के लिए भी शिक्षा तथा अनुशासन को दृढ़ करने की आवश्यकता है। अगर इस प्रकार के प्रयत्न नहीं किए जाते और काम करने वाले लोगों में समाजवादी सम्पत्ति तथा राष्ट्र को सुदृढ़ करने की भावना को जागृत करने के लिए उद्योग नहीं किया जाता तो पिछड़े हुए लोगों में साम्यवाद के निर्माण की भावना को उत्पन्न करना असम्भव होगा।

इन्हीं कारणों से सन् १९३८ की २८ दिसम्बर को सोवियत संघ की कम्यूनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने, सोवियत समाजवादी राष्ट्र-संघ की जन-नायकों की समिति ने तथा सभी

मज़दूर सभाओं की केन्द्रीय कमेटी ने ग़ैरहाज़री, काम में लापरवाही और निरुद्देश्य स्थान-परिवर्तन की प्रवृत्ति को रोकने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किए थे। जो लोग अकारण ही काम पर नहीं आते थे, उनकी बीमारी के बीमे तथा अन्य कुछ सुविधाएँ कुछ समय के लिए रोक दी गईं। मज़दूरों तथा दफ़्तर में काम करने वालों पर इसका भला असर हुआ। जो आलस्य के कारण काम से अलग रहते थे, उन्होंने ईमानदारी तथा मेहनत से काम करना प्रारम्भ किया, किन्तु कुछ आदतन भटकने वाले तथा ग़ैरहाज़िर रहने वाले लोग भी थे; उन्होंने अपनी निकम्मी आदतें नहीं छोड़ीं। इन लोगों का यह प्रयत्न था कि समाजवादी व्यवस्था में भी पूँजीवादी आचार तथा व्यवहार जीवित रहें। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए इन लोगों ने समाजवाद की सबसे महान् सफलता बेकारी के न होने से लाभ उठाना चाहा। यह जानकर कि श्रम की माँग होने के कारण काम कहीं भी मिल जायगा ये लोग कम काम तथा अधिक वेतन की खोज में बार-बार जगहें बदलते रहे। उनका यह ओछापन बड़ा ही अपराधपूर्ण था।

यद्यपि मज़दूरों तथा दफ़्तरों में काम करने वाले व्यक्तियों में ऐसे लोग नगण्य थे, पर इनके द्वारा हानि बहुत होती थी। इनकी शरारतों से देश को उतनी चीज़ें नहीं मिलीं जितनी योजना के अनुसार मिलना चाहिए था। इस प्रकार सन् १९४० के प्रथम चतुर्थांश में कोयले के उद्योग में ग़ैरहाज़रियों के कारण संयोजित तादाद से १००,००० टन कम कोयला निकाला गया। इस कारण ही कपड़े के उद्योग में भी योजना के अनुसार एक लाख गज़ कपड़े की कमी हुई। सन् १९४० के प्रथम पाँच महीनों में लेनिनग्राद के इंजन सुधारने के कारख़ाने में ग़ैरहाज़रियों के कारण ६६,५०० घंटों के काम का नुक़सान हुआ। यूराल पर्वत-श्रेणी पर

स्थित इंजीनियरिंग के बड़े कारखाने में इसी कारण ५०००००० रूबल की इसी साल में हानि हुई।

कौन हैं ये कामचोर जो जनता के हितों को कुचलते तथा समाजवाद के प्राथमिक नियमों की उपेक्षा करते हैं?

मजदूर सभाओं के संघ की केन्द्रीय समिति के नवें अधिवेशन में उसके प्रधान मन्त्री एन० एम० शेवरनिक ने अपनी रिपोर्ट में गोंचराव तथा क्रन्सनोजव नाम के दो काम बदलने वालों का उल्लेख किया था। इनमें से पहले ने, जो बीस वर्ष का नवयुवक था, आठ महीने के भीतर ६ जगहें बदलीं थीं। दूसरे ने एक वर्ष से कुछ अधिक समय में ६ कारखानों में काम किया था।

इस प्रकार के लोग निश्चित रूपसे परावलम्बी हो जाते हैं, और सोवियत संघ के ईमानदार तथा आत्म-त्यागी बुद्धि-जीवियों, किसानों तथा मजदूरों के विशाल समूह के परिश्रम से लाभ उठा कर जीवन-यापन करते हैं। ये आलसी लोग समाज तथा राष्ट्र के सहारे जीवित रहना चाहते हैं। इन लोगों के परावलंबन से ईमानदार और मन से काम करने वालों का उत्पादन कम हो जाता है। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अधिकांश मजदूर इन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं और इनको ठीक करने के लिए कठोर व्यवहार करते हैं।

इन लोगों द्वारा होने वाली हानि उस समय विशेष रूप से भयंकर थी जब पूँजीवादी संसार युद्ध की आग में तहस नहस हो रहा था और उसकी लपटें सोवियत संघ की ओर बढ़ रही थीं और जब सोवियत सरकार को अपनी आर्थिक तथा सैनिक शक्ति अधिक व्यवस्थित करने की आवश्यकता थी। इस खतरे का सामना करने के लिए मजदूर सभाओं की केन्द्रीय समिति ने, जो संसार की सबसे बड़ी मजदूर-संस्था है, कुछ विशेष उपाय सुझाये थे। सन् १६४० में अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

की व्याख्या करते हुए उसने मजदूर-सभाओं के सदस्यों से निम्न निवेदन किया था :

"वर्तमान परिस्थिति में हमारे देश को शान्ति की नीति पालन कर सोवियत संघ की जनता के हित के लिए अपनी आर्थिक तथा रक्षात्मक शक्ति को और भी बढ़ाने की आवश्यकता है। हमारे देश को पूँजीवादी देशों से अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में पीछे नहीं रहना चाहिए। सभी प्रकार की परिस्थितियों और संकटों का मुकाबला करने के लिए हमें आज से कई गुना अधिक तय्यार होना चाहिए। हमें अपने देश की आर्थिक और सैनिक शक्ति को और भी अधिक बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। हमारा कर्तव्य है कि हम देश के रक्षा-स्थलों को मजबूत करें, अपनी लाल सेना, जहाजी बेड़े और हवाई जहाजों की शक्ति को बढ़ा उनके लिए अच्छे किस्म का फौजी सामान तैयार करें और अपने सामाजिक उद्योग-धन्धों को, जो सेनाओं के लिए आवश्यक वस्तुएँ निर्मित करते हैं, सुसंपन्न करें। अपने राष्ट्र को सुदृढ़ करने तथा उद्योग-धन्धों को बढ़ाने के लिए पूर्णतः प्रयत्न-शील होना हमारे लिए आवश्यक है। हमें पहिले से अधिक कोयला, तेल, हवाई जहाज, टैन्क, बन्दूकें, गोलियाँ, इंजन, रेलगाड़ियाँ, मशीनें और मोटरें तैयार करना चाहिये तथा राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की तमाम शाखाओं में उत्पादन बढ़ाना चाहिए।"

इस अनुरोध में सोवियत संघ के सभी प्रगतिशील पुरुषों की भावनाएँ अभिव्यंजित हुई हैं; और इसके द्वारा सोवियत संघ की भलाई के लिए और अधिक लाभप्रद परिश्रम करने की भावना दृढ़ हुई। सन् १९४० की २६ जून को मजदूर-सभाओं के संघ की केन्द्रीय समिति के कहने पर, जो सोवियत संघ के विशाल जन-समूह की भावनाओं को व्यक्त करती है, सोवियत सरकार ने

आठ घंटे के दिन और सात दिन के सप्ताह की घोषणा की और मज़दूरों तथा दफ़्तरों में काम करने वालों को बिना स्वीकृति लिए जगह बदलने से रोका। मज़दूर सभाओं की केन्द्रीय समिति ने अपने अनुरोध में कहा था: "इस एक घंटे की बढ़ती से भी सोवियत संघ में प्रति दिन के काम के घंटे संसार के अन्य देशों से कम हैं।"

सोवियत संघ के लोगों ने ख़ुशी से अपने समाजवादी देश की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक त्याग किये। वे यह भली प्रकार जानते है कि पूँजीवादी संसार अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में केवल शक्ति और बल के तर्क को ही स्वीकार करता है। सोवियत संघ पूँजीवादी जगत् में साम्यवादी समाज का निर्माण कर रहा है। इसलिए सोवियत संघ के लोग सोवियत की सीमाओं के बाहर क्या हो रहा है उससे आँखें नहीं मींच सकते।

सोवियत संघ का मज़दूर-वर्ग ही अपने देश का स्वामी है। पूँजीवादी देशों के मज़दूरों की अवस्था से, जो पूँजीवादी शोषण-चक्र के नीचे पिस रहे हैं, उनमें मौलिक अन्तर हैं। सोवियत संघ के मज़दूर-वर्ग ने लड़ाई के समय में ख़ुशी से त्याग किया है। यह इस बात का प्रमाण है कि सोवियत राष्ट्र में श्रम जिस समाजवादी दृष्टिकोण से देखा जाता है वह अन्य देशों के दृष्टिकोण से मूलतः भिन्न है।

मज़दूरों की अतिरिक्त संख्या

व्यक्तिगत सम्पत्ति तथा शोषण के बन्धनों से उन्मुक्त समाजवादी व्यवस्था राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण करती है। सोवियत संघ में समाजवादी उद्योग तथा सामूहिक खेती का निरन्तर त्वरित विकास हो रहा है। प्रत्येक वर्ष कितनी ही बड़ी-बड़ी फ़ैक्ट्रियाँ तथा कारख़ाने

खोले जाते हैं। उनके लिए काम करने वालों की माँग निरन्तर बढ़ती जाती है।

मज़दूरों की शिक्षा की समस्या ने बोलशेविक पार्टी तथा सोवियत सरकार का ध्यान सब से अधिक आकर्षित किया है। अनेक उपायों के फलस्वरूप सोवियत संघ में मज़दूरों तथा दफ़्तरों में काम करने वालों की संख्या, जो सन् १६२८ में जब प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ हुआ था ११,६००००० थी, सन् १६३८ में, जब तृतीय पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ हुआ, २८,०००,००० हो गई और सन् १६४० में ३०,४००,००० तक पहुँच गई। यह विशाल मज़दूर सेना समाजवादी उद्योग-धन्धों को आगे बढ़ा रही है; किन्तु नए होशियार मज़दूरों की संख्या बढ़ाना विशेष रूप से आवश्यक है। इसलिए नवयुवकों को शिक्षा देकर मज़दूरों का एक 'अतिरिक्त दल' रखना राज्य का आवश्यक कर्तव्य है। कुशल अतिरिक्त मज़दूरों के बिना समाजवादी उद्योग-धन्धों को बढ़ाना असम्भव है; न उनके बिना राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाया जा सकता है न सोवियत भूमि में साम्यवादी व्यवस्था के निर्माण का कार्य पूरा हो सकता है।

किन्तु ये अतिरिक्त मज़दूर कहाँ से मिल सकते हैं? पूँजीवादी देशों में अतिरिक्त मज़दूरों की संख्या बेकारों की सेना के साथ-साथ गाँवों की अवनति तथा औद्योगिक केन्द्रों की ओर बर्बाद हुए किसानों के भागने से भी बढ़ती है। सोवियत संघ में तो गाँवों की अवनति हो नहीं रही है। खेती का काम फूल-फल रहा है तथा सामूहिक खेती की व्यवस्था ने किसानों के जीवन को सुरक्षित कर दिया है। इसी लिए सोवियत भूमि में शहरों की ओर भागते, कारख़ानों के दरवाज़े खटखटाते तथा काम की भीख माँगते बर्बाद किसान नहीं दिखाई देते। इसी

कारण वहाँ अतिरिक्त मज़दूर उसी प्रकार नहीं पाए जा सकते जैसे पूँजीवादी व्यवस्था में पाए जाते हैं।

सन् १९३१ में ही विभिन्न कार्य-समितियों के सामूहिक अधिवेशन में स्तालिन ने यह स्पष्ट कहा था कि शहरों में बेकारी तथा गावों में ग़रीबी के दूर होने से अब यह सम्भव नहीं कि लोग काम खोजते हुए ख़ुद कारख़ानों तक आएँ; अब नए मज़दूरों को लाने के लिए संगठित प्रयत्न करने की आवश्यकता होगी। उन्होंने कहा था :

"'पहले लोग ख़ुद ही काम की तलाश में फैक्ट्रियों और कारख़ानों तक आते थे, इसलिए कुछ हद तक इस क्षेत्र का कार्य अपने आप ही चल जाता था। उस समय ऐसा सम्भव भी था, क्योंकि बेकारी थी, गाँवों में वर्ग-भेद का बोलबाला था, ग़रीबी और भूखों मरने का डर सर पर सवार रहता था जिससे लोगों को गाँव छोड़कर शहर की ओर जाने के लिए मजबूर होना पड़ता था।......अब परिस्थिति में महान् परिवर्तन हो गया है इस कारण मज़दूर स्वतः ही नहीं आते। इस काल में वस्तुतः क्या परिवर्तन हुआ है? सर्व प्रथम, हमने बेकारी को ख़तम कर दिया है और इस प्रकार हमने उस शक्ति को ख़तम कर दिया है जो 'श्रम के बाज़ार' को गरम रखती थी। साथ ही हमने गाँवों के वर्ग-भेद को भी ख़तम कर दिया है जिससे वह भयंकर ग़रीबी ख़तम हो गई है जो किसानों को गाँवों से शहर की ओर ढकेलती थी। सबसे अन्त में, हमने गाँवों को नई मशीनें तथा बड़े बड़े ट्रैक्टर दिए हैं जिनके द्वारा पुरानी खेती की जगह सामूहिक खेती की शुरूआत हुई है और किसानों को मनुष्य की तरह काम करने और ज़िन्दा रहने का अवसर मिला है। आज देहात किसानों के लिए विमाता जैसी नहीं है, और इस दुर्दशा के दूर होने के कारण ही किसान अब गाँवों में रमने लगा है; वह

अब स्वयं ही मजूरी की खोज में गाँव छोड़ शहर की ओर नहीं जाता।"

नए मज़दूर पाने के लिए विभिन्न उद्योगों के अध्यक्षों ने सामूहिक खेतों के साथ यह मुआहिदा किया था कि प्रत्येक वर्ष वे कुछ मज़दूर देंगे। कुछ समय तक इस प्रकार काम चला किन्तु अब इससे पूरा नहीं पड़ता। उद्योग-धन्धों की आज की बढ़ती तथा गाँवों से मजूरी की खोज में लोगों के न निकलने से इस संगठित प्रयत्न के साथ-साथ नवयुवकों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करने की भी आवश्यकता है।

सन् १६४० की २ अक्तूबर को सोवियत संघ की प्रधान कार्य-समिति ने सोवियत समाजवादी राष्ट्र-संघ में अतिरिक्त मज़दूरों की योजना के लिए एक आज्ञा प्रकाशित की थी जिसमें प्रत्येक वर्ष एक लाख नवयुवकों को देश के विभिन्न कला-कौशल तथा रेल के स्कूलों में भेजने के लिए कहा गया था, ताकि वे विभिन्न धातुओं, रसायनों और खानों के काम, तथा अन्य उद्योग-धन्धों और यातायात के कार्य में निपुण हो जायँ। विशेष कला-कौशल सीखने के लिए १ साल तथा साधारण के लिये ६ मास की अवधि थी। अपनी शिक्षा समाप्त करने पर नव-युवकों को चार साल तक किसी राजकीय कारख़ाने में काम करना पड़ता था जिसे अतिरिक्त मज़दूरों की व्यवस्था करने वाली समिति निश्चय करती थी।

इन स्कूलों में शिक्षा की व्यवस्था निःशुल्क है, तथा साथ ही खाने-पीने, पहिनने-ओढ़ने, रहने तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का इन्तज़ाम भी राज्य की ओर से होता है। राज्य के द्वारा स्कूलों में पढ़ाई के इन्तज़ाम में तथा नवयुवकों के रहने सहने की व्यवस्था में काफ़ी खर्च होता है। इन स्कूलों के उपयोग के लिए २३००० मशीनों के औज़ार दिए जा चुके हैं; इनमें पढ़ने वाले नवयुवकों के

लिए ११६ लाख ऊनी तथा सूती कपड़ों और दो लाख तीस हज़ार जूतों के जोड़ों का राज्य ने इन्तज़ाम किया है। सन् १९४२ में राज्य की ओर से ४२ करोड़ रूबल अतिरिक्त मज़दूरों की शिक्षा के लिए व्यय होने का निश्चय हुआ था।

समाजवादी आर्थिक योजना की सफलता के लिए कुशल तथा अर्ध-कुशल मज़दूरों की शिक्षा की व्यवस्था, जब वे युवक हों, आवश्यक है; उद्योग-धन्धों के आधार को दृढ़ करने तथा उन्हें बढ़ाने के लिए भी इसकी आवश्यकता है। समाजवादी योजना का तात्पर्य है कि उद्योग-धन्धों की भौतिक तथा कोष संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ श्रम-शक्ति की भी पूर्ति का प्रयत्न किया जाय। इसके बिना संयोजित अर्थ-व्यवस्था असम्भव है। इसी लिए समाजवादी आर्थिक योजना की सफलता के लिए कला-कौशल की शिक्षा की राज-व्यवस्था होना भी आवश्यक है। इसके अलावा विषाक्त पूँजीवादी वातावरण के कारण भी आज सोवियत संघ इस प्रकार की व्यवस्था करने के लिए मजबूर है।

औद्योगिक शिक्षा पाने के लिए शहरों से नवयुवकों के विशाल समूह का आना स्वाभाविक है; किन्तु अधिकांश देहात से ही आते हैं। क्या इससे सामूहिक खेतों के लिए होने वाली श्रम-शक्ति की आवश्यकता में कमी नहीं होगी? किसी प्रकार भी नहीं; क्योंकि खेती में औद्योगीकरण के फल-स्वरूप यातायात तथा औद्योगिक शिक्षा के लिए सोवियत संघ में बहुत बड़ी संख्या में लोग मिल जाते हैं। सोवियत सरकार के योजना-विभाग ने हिसाब लगाया है कि यदि सामूहिक खेतों में मशीनों का उपयोग और बढ़ा दिया जाय तो खेती से ६ से ८ लाख तक मज़दूर छोड़े जा सकते है। इस प्रकार गाँवों के नवयुवक बिना खेती को हानि पहुँचाए उद्योग-धन्धों में जा सकते हैं।

इस आज्ञा के जारी होने के पहले भी सामूहिक खेतों में काम करने वाले बहुत से नवयुवक कारखानों में जाना चाहते थे; किन्तु उस समय इसकी व्यवस्था करना कठिन था। अब वे सभी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी गई हैं जिनमें गाँव का नवयुवक भी शहर के नवयुवक की भाँति शिक्षा प्राप्त कर कुशल मजदूर बन सकता है। सन् १९४० की नवम्बर को होने वाली पहली माँग का गाँव के नवयुवकों ने अनुमानित उत्तर दिया था। दस दिन के भीतर ही भरती पूरी हो गई। अपनी जेब से पढ़ना चाहने वालों की अर्जियों से भरती का दफ़्तर भर गया था। पहली भरती में ६०१,३०८ नवयुवकों में से दो तिहाई अपने पैसे से पढ़ना चाहने वाले थे।

सोवियत सरकार मजदूर की आने वाली पीढ़ी के लिए इतने ध्यान और मनोयोग से काम कर रही है, जितना 'सोवियतों की भूमि' में ही सम्भव है। प्रतिभा-सम्पन्न विशेषज्ञ, कुशल इंजीनियर, विख्यात स्ताखानोवाइत तथा उद्योगों के संबंध में प्रगतिशील विचार रखने वाले व्यक्तियों को इन नवयुवकों को औद्योगिक कुशलता, संगठन तथा अनुशासन की शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया गया है। ये अपने पूर्वजों से कितने खुश क़िस्मत हैं। मास्को के स्थापत्य स्कूल में पीटर आरलाफ़ नाम के प्रसिद्ध स्ताखानोवाइत ने, जो रूसी सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्र का सदस्य भी था, राजगीर नवयुवकों से अन्य बातों के साथ इस बात का भी उल्लेख किया कि क्रान्ति के पहले के काल में अपना काम सीखने के लिए उसे कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। उसने नवयुवकों की कल्पना को सोवियत भूमि में होने वाले महान् निर्माण की ओर उन्मुख किया और कहा कि इसमें उन्हें भाग लेना है। उसकी जीवन-कथा से नवयुवक इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने तत्काल राजगीर, बढ़ई तथा चित्रकार के कौशल को कम से कम समय में सीखने का निश्चय किया।

उन नवयुवकों की देख-रेख का कार्य केवल सरकारी अधिकारियों पर ही नहीं छोड़ दिया गया है, वरन् जन साधारण भी दिलचस्पी लेते हैं। उदाहरण के लिए मास्को की सरकारी रक्षण-शाला के गोल्डेन वाइज़र, आँइस्ट्राख आदि प्रोफ़ेसरों ने सांस्कृतिक क्षेत्र में काम करने वालों से इन स्कूलों की सांस्कृतिक माँग की पूर्ति के लिए निवेदन किया था। कुछ लेखक तथा वैज्ञानिक प्रचलित साहित्यिक तथा वैज्ञानिक विषयों में वक्ताओं के रूप में कार्य करने के लिए तयार भी हुए थे। इस प्रकार की व्यवस्थित औद्योगिक शिक्षा से ही मज़दूर-वर्ग का सांस्कृतिक विकास होता है।

यह सभी जानते हैं कि पूँजीवाद के विकास से मज़दूर-वर्ग की अवस्था और भी शोचनीय हो जाती है। केवल श्रम-कौशल का ही अपहरण नहीं होता, वरन् नई पीढ़ी के लिए बहुत से जीवन-यापन के साधन भी बन्द हो जाते हैं। आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था में जैसी बेकारी की बाढ़ देखने को मिलती है, वैसी ही अकुशल नवयुवकों की भी।

इंगलैण्ड के युवकों में फैली हुई बेकारी पर लिखी गई एक पुस्तक के लेखकों का कहना है कि देश के विभिन्न भागों में, विशेष कर उत्तरी भाग में, चौदह से अठारह साल तक की अवस्था के युवकों को स्कूलों तथा कारखानों में शिक्षा तथा कला-कौशल में निपुणता प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता है। उस अवस्था के युवकों को जगह-जगह काम करना पड़ता है जिससे उनका बौद्धिक विकास किसी प्रकार भी नहीं होता; अकसर तो उन्हें ऐसे उद्योग-धन्धों में काम करना पड़ता है जिनमें बड़ी उमर के लोग भरे होते हैं। इस प्रकार पूँजीवाद अव्यवस्थित औद्योगिक शिक्षा तथा आत्मा को क्षुब्ध करने वाली बेकारी की व्यवस्था में परिणत हो गया है।

समाजवादी व्यवस्था में मज़दूरों को कलात्मक तथा सांस्कृतिक शिक्षायें दोनों ही मिलती हैं; इस अविराम विकास से ही शारीरिक तथा बौद्धिक श्रम के बीच का अन्तर मिटेगा। सचमुच यह केवल समाजवादी व्यवस्था में ही मिट भी सकता है। समाजवादी क्रान्ति की तेइसवीं वर्ष-गाँठ के समारोह में सात नवम्बर १६४० को कालिनिन ने कहा था कि पूँजीवादी देशों में "अतिरिक्त मज़दूरों के लिए नहीं वरन् बेकारों के विशाल समूह में कुछ को किसी प्रकार का काम देने के लिए चिन्तित होना पड़ता है। पूँजीवादी जगत में बेकारों का विशाल समूह भयंकर ज्वालामुखी समझा जाता है"।

केवल समाजवादी व्यवस्था ही, जो मज़दूरों की भौतिक तथा सांस्कृतिक उन्नति को दृष्टिगत करते हुए देश की स्वतन्त्रता और रक्षा के लिए आर्थिक योजना बनाती है, सफलता के साथ अतिरिक्त श्रम-शक्ति का निर्माण कर सकती है। समाजवादी व्यवस्था में श्रम शक्ति को बढ़ाने के लिए कुशल मज़दूरों के 'राष्ट्रीय अतिरिक्त दल' की योजना एक नया क़दम है; राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था की विभिन्न शाखाओं में श्रम का नियोजित उपयोग भी नवीन प्रयोग है। बड़े पैमाने पर कला-कौशल की शिक्षा की व्यवस्था श्रम की उत्पादन-शक्ति और वस्तुओं की उपज बढ़ाने के लिए तथा समाजवाद से साम्यवादी व्यवस्था में संक्रमण के लिए आवश्यक है।

नवीन सामाजिक व्यवस्था की सफलता

लेनिन और स्तालिन ने बार बार इस बात पर ज़ोर दिया है कि अन्ततः श्रम की बढ़ी हुई उत्पादन-शक्ति से ही नवीन योजना सफल हो सकती है। पूँजीवाद ने सामन्तवाद को पराजित किया, चूँकि उसने श्रम की उत्पादन-शक्ति को

बढ़ाया था। समाजवाद पूँजीवाद को ऐसी बढ़ी हुई उत्पादन-शक्ति से ही पराजित कर सकेगा जिसे पूँजीवादी व्यवस्था नहीं पा सकती।

सोवियत संघ ने पाँच वर्षों के भीतर ही अपनी आर्थिक स्थिति सुधार ली यद्यपि उसे अन्य देशों से अधिक पहले साम्राज्यवादी युद्ध में तथा बाद के गृह-युद्ध में हानि उठानी पड़ी थी। पूँजीवादी देशों को जितना समय लगा है उसके आधे समय में ही यह सफलता मिली है। सोवियत संघ को नवीन विधान से तथा नए मानवीय संबंधों के आधार पर अपनी आर्थिक व्यवस्था के पुनर्निर्माण से संसार के किसी भी पूँजीवादी देश से अधिक सफलता मिली है। सोवियत संघ के द्वारा उत्पादित होने वाली वस्तुओं का विकास-क्रम संयुक्त राष्ट्र अमरीका से अधिक तीव्र रहा है। सन् १९२९ में यदि उत्पादन १०० मान लिया जाय, तो संयुक्त राष्ट्र में सन् १९४० में वह १११ था और सोवियत संघ मे ५३४ अर्थात् संयुक्त राष्ट्र में ११ प्रतिशत और सोवियत संघ में ४३४ प्रतिशत उत्पादन बढ़ा। तीव्र औद्योगीकरण तथा अधुनातन कारख़ानों के फलस्वरूप सोवियत संघ आज विभिन्न प्रकार के उत्पादनों तथा उत्पादित वस्तुओं के परिमाण में समस्त यूरप में सब से आगे है। सन् १९३८ में सोवियत संघ में उत्पादित वस्तुओं का परिमाण सन् १९१३ के ज़ारशाही रूस का नौ गुना था। सन् १९१६ में सम्पूर्ण उत्पादन का मूल्य ११० करोड़ रूबल था; सन् १९३८ में उसका मूल्य लगभग १ खर्व रूबल हो गया। सन् १९४० में सम्पूर्ण औद्योगिक उत्पादन पिछले वर्ष से ११ प्रतिशत अधिक हुआ था।

सोवियत संघ ट्रैक्टरों, खेत काटने की मशीनों, मोटर ट्रकों, इंजनों, रेलगाड़ियों तथा खेती की मशीनों आदि के बनाने में यूरप में सब से आगे है; इसी प्रकार वह सोना, लोहा, तेल, मैंगनीज़,

सुपरफ़ासफ़ेट, तांबे तथा चुकन्दर के उत्पादन में भी यूरप में सब से आगे है।

यद्यपि सोवियत संघ ने यूरप के पूँजीवादी देशों से अपने उत्पादन को बहुत आगे बढ़ा लिया है, फिर भी अभी वह आबादी के अनुपात से उत्पादन में पिछड़ा हुआ है। आबादी के हिसाब से सोवियत संघ के बिजली के वार्षिक उत्पादन का फ्रांस ढाई गुना, ब्रिटेन तिगुना, जर्मनी साढ़े तीन गुना और संयुक्त राष्ट्र साढ़े पाँच गुना उत्पन्न करता है, यद्यपि सोवियत संघ का सम्पूर्ण उत्पादन फ्रांस और ब्रिटेन दोनों से अधिक है।

सोवियत संघ को आबादी के अनुसार कच्चे लोहे के उत्पादन में ब्रिटेन को पाने के लिए अपने प्रति वर्ष के उत्पादन में सन् १९३८ की १५ लाख टन की पैदावार को देखते हुए १५ लाख टन और बढ़ाना पड़ेगा और जर्मनी को पकड़ने के लिए ४०·४५ लाख टन प्रति वर्ष बढ़ाना पड़ेगा। सन् १९२९ के संयुक्त राष्ट्र के कच्चे लोहे के उत्पादन को पाने के लिए सोवियत संघ को अपना उत्पादन ५०.६० लाख टन और बढ़ाना पड़ेगा।

सन् १९४१ की २२ फ़रवरी को सोवियत संघ के समाचार-पत्रों में ख़बर छपी थी कि कम्यूनिस्ट पार्टी और सोवियत सरकार की ओर से सरकारी योजना-विभाग को आदेश मिला है कि पन्द्रह वर्ष की एक ऐसी आर्थिक योजना बनाई जाय जिससे सोवियत संघ कच्चे लोहे, इस्पात, बिजली, मशीनों तथा अन्य उत्पादन के साधनों और उपयोग की वस्तुओं के उत्पादन में प्रधान पूँजीवादी देशों से आगे हो जाय।

पूँजीवादी देशों के साथ आर्थिक होड़ में सफलता प्राप्त करना बड़ा दुस्तर कर्म है, और तृतीय पँच-वर्षीय योजना की सीमा से बाहर है। यह सफलता श्रम की बढ़ी हुई उत्पादन-शक्ति द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। उन्नीसवीं शताब्दी में श्रम की उत्पादन-

शक्ति पूँजीवादी जगत में केवल दूनी हुई थी। कुछ पूँजीवादी देश अपने सबसे अच्छे वर्षों में श्रम की उत्पादन-शक्ति को चार तथा पाँच प्रतिशत बढ़ा सके थे। सोवियत संघ में सन् १९१७ से १९३७ तक, केवल बीस वर्षों में, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत थोड़ा समय है, श्रम की उत्पादन-शक्ति प्रति वर्ष ३.३ गुने हिसाब से बढ़ी थी; और क्रान्ति के पहले के रूस की तुलना में प्रति घंटे का उत्पादन ४.५ गुने के हिसाब से बढ़ा था। समाजवादी खेती की व्यवस्था में श्रम की उत्पादन-शक्ति सन् १९३७ में पूर्व-क्रान्ति की व्यक्तिगत खेती की व्यवस्था से दो-तीन गुने से अधिक बढ़ी हुई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सन् १९२८ से १९३२ तक श्रम की उत्पादन-शक्ति बड़े पैमाने के समाजवादी उद्योगों में ४१ प्रतिशत के हिसाब से बढ़ी थी; और द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में सन् १९३३ से १९३७ तक ८२ प्रतिशत और बढ़ी थी।

इस प्रकार द्वितीय पंच-वर्षीय योजना में श्रम की उत्पादन-शक्ति प्रथम पंच-वर्षीय योजना की अपेक्षा दूनी बढ़ी है और यह प्रगति किसी भी पूँजीवादी देश के किसी भी समय की रफ़्तार से अधिक है। इससे समाजवादी व्यवस्था की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है, जिसमें श्रम की उत्पादन-शक्ति इतनी बढ़ी है कि जिसको पूँजीवाद कभी नहीं प्राप्त कर सका। यह श्रेष्ठता उद्योग-धन्धों में नई मशीनरी लगने, वैज्ञानिक राष्ट्रीय आर्थिक योजना बनने तथा नए मजदूरों की कार्य-कुशलता से सम्भव हुई है। यह श्रेष्ठता उत्पादन-शक्तियों और देश के प्राकृतिक साधनों के संयोजित वितरण एवम् उपयोग तथा उद्योग-धन्धों के उच्चतर सहयोग और विशेष संगठन से, जो समाजवादी व्यवस्था तथा सोवियत शासन के अन्तर्गत ही सम्भव हैं, पाई गई है।

श्रम की उत्पादन-शक्ति बढ़ाने में कमकरों के जीवन-सुधार, सांस्कृतिक उन्नति, नवीन श्रम-अनुशासन और पूरे किये काम के

लिए वेतन देने की समाजवादी व्यवस्था ने विशेष योग दिया है। कुछ अन्य दिशाओं से भी श्रम की उत्पादन-शक्ति के विकास में संबल मिला है जैसे श्रम के प्रति परिवर्तित दृष्टि-कोण, समाजवादी स्पर्धा का विकास तथा स्ताखानाव-आन्दोलन।

यदि गत युद्ध न छिड़ जाता, तो तृतीय पंच-वर्षीय योजना से मज़दूर-वर्ग के कलात्मक तथा सांस्कृतिक स्तर काफ़ी ऊँचे उठ जाते। श्रम की उत्पादन-शक्ति बढ़ने से मज़दूर-वर्ग का रहन-सहन ऊपर उठता तथा उसकी सांस्कृतिक उन्नति भी होती। सोवियत संघ की कम्यूनिस्ट पार्टी के अठारहवें अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ था :

"आज प्रश्न बेकारी ख़तम करने तथा गाँवों से ग़रीबी के मिटाने का नहीं—उसे तो हम पहले ही सदा के लिए हल कर चुके हैं। आज का कार्य है, सोवियत संघ की जनता की बढ़ती हुई माँग के अनुसार, जन साधारण की ऐसी सांस्कृतिक उन्नति, जिसे अधिकतम सम्पन्न पूँजीवादी देश भी न प्राप्त कर सके हों। यह सांस्कृतिक उन्नति ही समाजवाद के बसन्त के आगमन की सूचक होगी जब एक नवीन संस्कृति, समाजवादी संस्कृति, फूले फलेगी।

स्तालिन-विधान के अनुसार समाजवादी व्यवस्था में श्रम ऐसे कर्तव्य के रूप में स्वीकृत है जो बोझ नहीं वरन् सम्माननीय है। इसके साथ ही उसमें यह भी कहा गया है कि समाजवादी व्यवस्था में श्रम के ही आधार पर जीविका प्राप्त की जा सकती है।

समाजवादी व्यवस्था के श्रम करने के कर्तव्य तथा पूँजीवादी व्यवस्था के बलात् कराए जाने वाले श्रम के बीच, जो सर्वहारा वर्ग भूख से परेशान हो शोषण के रथ में जुत कर करता है, कोई साम्य नहीं है। सोवियत संघ में श्रम को नए साम्यवादी

दृष्टिकोण से देखा जाने लगा है। इस दृष्टिकोण ने काफ़ी व्यापकता पा ली है। सोवियत संघ के आगे बढ़े हुए किसान, मज़दूर, दफ़्तर के कर्मचारी, स्ताख़ानोवाइत तथा द्रुत गति से श्रम करने वाले अपने कार्य, अपनी मशीन, अपने कारख़ाने तथा अपने कार्यालय से स्नेह रखते हैं। जब वे श्रम करते हैं, तो समझते हैं कि वे कोई सार्वजनिक महत्व का कार्य कर रहे हैं। उन्हें यह भली प्रकार ज्ञात है कि वे जितना अधिक और जितना अच्छा कार्य करेंगे, उतना ही उनके रहन-सहन का दर्जा ऊपर उठेगा और उनको आदर तथा सम्मान प्राप्त होगा। किन्तु श्रम के प्रति यह उत्साह तथा वीरत्व की भावना केवल स्वार्थोद्भूत नहीं है। समाजवादी पितृ-भूमि के हित में अपनी समस्त शक्तियों को जुटा देने की लालसा सबसे श्रेष्ठ श्रम-प्रेरक-शक्ति हैं। यह जन-कल्याण की भावना है, सच्ची सोवियत देश-भक्ति है।

अभी तक श्रम केवल कर्तव्य, माना जाता रहा है। पर श्रम के प्रति यह नया रुख़ कर्तव्य के रूप में उसे जीवन की प्रथम आवश्यकता मानता है और आनन्द के लिए किये जाने वाले श्रम के रूप में परिवर्तित करता है। एक स्ताख़ानोवाइत का श्रम, जिसमें वह अपनी सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक शक्ति लगा देता है, उसके लिए सम्मान-पूर्ण तथा आनन्द-दायक है; वह उज्ज्वलतर भविष्य का पूर्वसूचक है; वह सचमुच साम्यवाद की आशा किरण है।

इति

मुद्रकः—रामशरण अग्रवाल, प्रगति प्रेस, इलाहाबाद